

कथा कुंज

पाठ्य-पुस्तक

बी.एस.सी./ बी.वी.एस.सी./ एम.एस.सी.(Biological sciences)/ बी.एस. (4)/ बी.ओ.सी./ बी.एस.सी.(Hons.)
B.Sc/ B.V.Sc/ M.Sc (Biological sciences)/
B.S(4)/ B.O.C/ B.Sc (Hons.)
(Language under AECC)
प्रथम सेमिस्टर / I Semester

संपादक

डॉ. शेखर

डॉ. मोहम्मद अन्जरूल हक्

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु – 560 001

KATHA KUNJ: Edited by Dr. Shekhar and Dr. Mohamed Anzarul Haq ; Published by Prasaranga, Bengaluru City University, Bengaluru-560 001

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण –2021

प्रधान संपादक

डॉ. शेखर

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु–560 001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2021–22 शैक्षिक वर्ष से एन.ई.पी. पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा है।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात् हिंदी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सकें कि साहित्य का विश्लेषण कैसे किया जाए, उसकी सराहना कैसे की जाए और दिए गए पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली भाँति परिचित हो सकें। जैसे विज्ञान आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी है। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाजशास्त्री विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। एन.ई.पी. सेमिस्टर पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया है।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी-अध्ययन-मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

संपादक मण्डल का विश्वास है कि यह कहानी संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गाँधी
कुलपति
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु—560 001

प्रधान संपादक की कलम से.....

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है। एन.ई.पी. सेमिस्टर पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गाँधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

डॉ. शेखर
अध्यक्ष (बी.ओ.एस.)
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु-560 001

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

1. हींगवाला
— सुभद्राकुमारी चौहान ...01
2. अलबम
— सुदर्शन ...07
3. सबक
— गुरजाड़ अप्पाराव ...16
4. अब्बूखाँ की बकरी
— जाकिर हुसैन ...24
5. मुक्ति
— मन्नू भण्डारी ...34
6. सच बोलने की भूल
— यशपाल ...48
7. सौभाग्य के कोड़े
— प्रेमचन्द ...63

1. हींगवाला

सुभद्राकुमारी चौहान

परिचय :- श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान जी का जन्म प्रयाग, उत्तरप्रदेश में हुआ। आपने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था। आप न केवल कवयित्री हैं बल्कि श्रेष्ठ कहानीकार भी हैं। आपकी कविताओं में तथा कहानियों में भी देशप्रेम तथा वात्सल्य रस का मर्म स्पर्शी चित्रण मिलता है। मुकुल, त्रिधरायें बिखरे मोती आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 1948 में एक मोटर दुर्घटना में उनका निधन हो गया फिर भी हिन्दी साहित्य क्षेत्र में इनका नाम अमर रह गया।

‘हींगवाला’ कहानी में स्नेहभाव की गरिमा दिखाई गई है। दो विभिन्न धर्मियों के बीच में भी सहानुभूति तथा सहयोग की भावना बढ़ानेवाला स्नेह सच्ची मानवता का प्रतीक है जो इस कहानी में सुंदर ढंग से वर्णित है। यद्यपि सावित्री हिन्दू नारी थी फिर भी खान के प्रति अत्यंत सहानुभूति रखती है। उसी प्रकार खान भी जान की परवाह न करके दंगों में फँसे हुए सावित्री के बच्चों को सुरक्षित घर पहुँचा देता है।

.....

कहानी :- “अम्मा.....हींग लेगा ?” कहता हुआ लगभग 35 साल का एक खान आँगन में आकर रूक गया। पीठ पर बंधे हुए पीपे को खोलकर उसने नीचे रख दिया और नीम के पेड़ के नीचे बने हुए चबूतरे पर बैठ गया। भीतर बरामदे से एक नौ-दस वर्ष के बालक ने बाहर निकलकर उत्तर दिया, “अभी कुछ नहीं लेना है, जाओ।”

पर खान भला क्यों जाने लगा ? ज़रा और आराम से बैठ गया और अपने साफ़े के छोर से हवा करता हुआ कहा, “अम्मा, हींग ले लो, अम्मा। हम अपने देश को जाता है, बहुत दिनों में लौटेगा।” सावित्री रसोईघर से हाथ धोकर आई और बोली, “हींग तो बहुत—सी ले रखी है खान। अभी पंद्रह दिन हुए नहीं, तुमसे ही हींग ली थी।” वह उसी स्वर में फिर बोला, “हेरा हींग है माँ, हम तुम्हारे हाथ की बोहनी माँगता है। एक पाँच ग्राम ही ले लो, पर लो ज़रूर। इतना कहकर फौरन एक डिब्बा सावित्री के सामने सरकाते हुए कहा, तुम और कुछ मत देखो माँ, यह हींग एक नंबर का है। हम तुम्हें धोखा नहीं देगा।”

सावित्री बोली, “पर इतनी हींग लेकर करूँगी क्या ? ढेर—सी तो रखी है।” खान ने कहा, “कुछ भी ले लो अम्मा। हम देने के लिए आया है घर में पड़ी रहेगी। हम अपने देश को जाता है। खुदा जाने कब लोटेगा।” और खान बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए हींग तौलने लगा। इस पर सावित्री के बच्चे बहुत नाराज़ हुए। सभी बोल उठे, “मत लेना माँ, तुम कभी न लेना। जबरदस्ती तौले जा रहा है।” जब खान ने हींग तौलकर पुड़िया बनाकर सावित्री के सामने रख दी, तब सबसे छोटे बच्चे ने पुड़िया उठाकर खान की ओर फेंकते हुए कहा, “ले जाओ, हमें नहीं लेना है। चलो माँ, भीतर चलो।”

सावित्री ने किसी की बात का उत्तर न दे हींग की पुड़िया उठा ली और पूछा, “कितने पैसे हुए खान ?” पाँच रुपये अम्मा, माँ ने पैसे लाकर खान को दे दिए। खान सलाम करके चला गया। पर बच्चों को माँ की यह बात अच्छी न लगी।

बड़े लड़के ने कहा, “माँ, तुमने खान को वैसे ही पैसे दे दिए। हींग की कुछ जरूरत नहीं थी।” छोटा माँ से चिढ़कर बोला, “दो माँ, पैसे हमको भी दो। हम बिना लिए न रहेंगे।” लड़की जिसकी उम्र आठ साल की थी, बड़े गंभीर स्वर से बोली, “तुम माँ से पैसा न माँगो। वे तुम्हें न देंगी। उनका बेटा वही खान है।” सावित्री को इन बच्चों की बातों से हँसी आ रही थी। उसने अपनी हँसी दबाकर बनावटी क्रोध से कहा, “चलो—चलो, बड़ी बातें बनाने लग गए हो। खाना तैयार है, खाओ।”

छोटो बोला, “पहले पैसे दो। तुमने खान को दिए हैं।”

सावित्री ने कहा, “खान ने पैसे के बदले में हींग दी है। तुम क्या दोगे ?”

छोटा बोला, “मिट्टी देंगे।”

सावित्री हँस पड़ी, “अच्छा चलो, पहले खाना खा लो फिर मैं रुपये तुड़वाकर तीनों को पैसे दूँगी।”

खाना खाते—खाते हिसाब लगाया। एक रुपये में भी पैसे, पैंतीस पैसे रतन लेगा, पैंतीस पैसे मुन्नी लगी, छोटे के लिए तो तीस पैसे बनेंगे। छोटा बिगड़ पड़ा, “कभी नहीं मैं तीस पैसे नहीं लूँगा।” और दोनों में मारपीट हो चुकी होती, यदि मुन्नी तीस पैसे स्वयं लेना स्वीकार न कर लेती।

कई महीने बीत गए। सावित्री की हींग सब खत्म हो गई। इसी बीच होली आई। होली के अवसर पर हिन्दू—मुसलमानों में बड़े भयंकर रूप से दंगा हो गया। बहुत से हिन्दू—मुसलमान मारे

गए, मरनेवालों में दो खान भी थे। सावित्री कभी-कभी सोचती, हींगवाला खान तो नहीं मार डाला गया ? न जाने क्यों उस हींगवाले खान की याद उसे प्रायः आ जाया करती थी। एक दिन सबेरे-सबेरे सावित्री उसी नीम के पेड़ के नीचे चबूतरे पर बैठी कुछ बुन रही थी। उसने सुना, उसके पति किसी से कड़े स्वर में कह रहे हैं, “क्या काम है ? भीतर मत जाओ। यहाँ आओ।” उत्तर मिला, “हींग है, हेरा हींग।” और खान तब तक आँगन में सावित्री के सामने पहुँच चुका था। खान को देखते ही सावित्री ने कहा, “बहुत दिनों में आए खान। हींग तो कब की खत्म हो गई!”

खान बोला, “देश कूँ गया था, अम्मा, (परसूँ) परसों ही तो लौटा हूँ।”

सावित्री बोली, “यहाँ तो हिन्दू-मुसलमानों में बहुत ज़ोरों का दंगा हो गया है।”

खान बोला, “सुना। समझ नहीं है लड़नेवालों में।”

सावित्री बोली, “खान, तुम हमारे घर चले आए। तुम्हें डर नहीं लगा ?”

दोनों कानों पर हाथ रखते हुए खान बोला, “ऐसी बात मत करो अम्मा। बेटे को भी क्या माँ से डर हुआ है, जो मुझे होता ?” और इसके बाद ही उसने अपना डिब्बा खोला और हींग तोलकर सावित्री को दे दी। खान पैसा फिर आकर ले जाएगा, कहकर चला गया।

दशहरा हिन्दुओं का बड़ा त्योहार होता है। पिछली होली पर दंगा हो चुका था। हिन्दू होली न जला सके थे। दशहरा वे दूने उत्साह के साथ मनाने की तैयारी में थे।

चार बजे शाम को काली का जुलूस निकलनेवाला था। पुलिस का काफी प्रबंध था। सावित्री के बच्चों ने कहा, “हम भी काली का जुलूस देखने जाएँगे।” सावित्री के पति शहर से बाहर गए थे। सावित्री स्वभाव से भीरु थी। उसने बच्चों को पैसों का, खिलौनों का, सिनेमा का, न जाने कितने प्रलोभन दिए, पर बच्चे न माने, सो न माने। नौकर रामू भी जुलूस देखने को बहुत उत्सुक हो रहा था। उसने कहा, “भेज दो न माँ जी, मैं अभी दिखाकर लिए आता हूँ।” लाचार होकर सावित्री को काली का जुलूस देखने के लिए बच्चों को भेजना पड़ा। उसने बार—बार रामू को ताकीद की कि दिन रहते ही वह बच्चों को लेकर लौट आए।

बच्चों को भेजने के साथ ही सावित्री लौटने की प्रतीक्षा करने लगी। देखते ही देखते दिन ढल चला। अंधेरा भी बढ़ने लगा, पर बच्चे न लौटे। अब सावित्री को न भीतर चैन था, न बाहर। इतने में ही उसे कुछ आदमी सड़क पर भागते हुए जान पड़े। वह दौड़कर बाहर आ गई। उन आदमियों से पूछा, “ऐसे भागे क्यों जा रहे हो ? काली का जुलूस तो निकल गया न ?”

एक आदमी बोला, “दंगा हो गया माँ जी। दंगा, बड़ा भारी दंगा।” कहता हुआ वह तेज़ी से आगे बढ़ गया। सावित्री के हाथ—पैर ठंडे पड़ गए। इसी समय कुछ लोग तेज़ी से आते हुए दिखे। सावित्री ने उन्हें भी रोका। उन लोगों ने भी वही कहा, “दंगा हो गया है।”

अब सावित्री क्या करे ? उन्हीं में से एक से उसने कहा, “भाई, तुम मेरे बच्चों की खबर ला दो। दो लड़के हैं, एक लड़की। मैं तुम्हें मुँह माँगा इनाम दूँगी।”

एक देहाती ने जवाब दिया, “का हम तुम्हारे बच्चन का पहचानित है माँ जी ? फिर जान से पियार कुछों नाहीं होत।” यह कहकर वह चला गया।

सावित्री सोचने लगी, सच तो है, इतनी भीड़ में भला देहाती मेरे बच्चों को खोजे भी कैसे ? पर अब वह भी करे तो क्या करे ? उसे रह-रहकर अपने पर क्रोध आ रहा था। आखिर उसने बच्चों को भेजा ही क्यों ? वे तो बच्चे ठहरे, जिद तो करते ही, पर भेजना उसके हाथ की बात थी।

सावित्री पागल-सी हो गई। बच्चों की मंगल-कामना के लिए उसने सभी देवी-देवता मना डाले। शोरगुल बढ़कर शांत हो गया। रात के साथ-साथ नीरवता बढ़ चली। पर उसके बच्चे लौटकर न आए, सावित्री हताश हो गई और फूट-फूटकर रोने लगी। इसी समय उसे वही चिरपरिचित स्वर सुनाई पड़ा, “अम्मा।”

सावित्री दौड़कर बाहर आई। उसने देखा, उसके तीनों बच्चे खान के साथ सकुशल लौट आए हैं।

खान ने सावित्री को देखते ही कहा, “वक्त अच्छा नहीं अम्मा। बच्चों को ऐसी भीड़-भाड़ में बाहर न भेजा करो।” बच्चे दौड़कर माँ से लिपट गए।

.....

2. अलबम

सुदर्शन

परिचय :- मानव मनोविकारों की सहज अभिव्यक्ति में आप को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। थोड़े-से-नपे-तुले शब्दों में जीवन चित्र प्रस्तुत करने में आप सिद्धहस्त हैं। महत्वपूर्ण रचनाएँ:- सुदर्शन सुमन, सुदर्शन सुधा, तीर्थ यात्रा, चार कहानियाँ, पनघट, नगीने कहानी संग्रह, प्रेम पुजारिन उपन्यास, भाग्यचक्र, सिकंदर, अंजना नाटक—एकांकी महत्वपूर्ण हैं।

अलबम सुदर्शन की श्रेष्ठ कहानी है। इसमें दो ईमानदार व्यक्तियों के चरित्रों का हृदयस्पर्शी निरूपण किया गया है।

वर्तमान स्वार्थमय जनजीवन में परोपकार की उच्च वृत्ति गायब होती जा रही है। अतः छात्रों के मन में उक्त वृत्ति को जगाने के उद्देश्य से इसे चुना है।

.....

कहानी :- पण्डित शादीराम ने ठंडी सांस भरी और सोचने लगे—क्या यह ऋण कभी सिर से न उतरेगा ?

वह निर्धन थे ; परन्तु दिल के बुरे न थे। वे चाहते थे कि चाहे जिस प्रकार भी हो, अपने यजमान—लाला सदानन्द—का रुपया अदा कर दें। उनके लिए एक—एक पैसा मोहर के बराबर था। अपना पेट काटकर बचाते थे; परन्तु जब चार पैसे इकट्ठे हो जाते, तो कोई ऐसा खर्च निकल आता कि सारा रुपया उड़ जाता। शादीराम के हृदय पर बर्छियाँ चल जाती थीं। उनका वही हाल होता था, जो उस डूबे हुए मनुष्य का होता है, जो हाथ—पांव मारकर किनारे पहुँचे, और किनारा टूट जाए। उस समय उसकी

दशा कैसी करुणाजनक, कैसी हृदय—बेधक होती है ? वह प्रारब्ध को गालियाँ देने लगता है। यही दशा शादीराम की थी।

इसी प्रकार कई वर्ष बीत गए। शादीराम ने पैसा—पैसा बचाकर अस्सी रुपये जोड़ लिए। उन्हें लाला सदानन्द के पाँच सौ रुपये देने थे। इस अस्सी रुपये की रकम से ऋण उतरने का समय निकट आता प्रतीत हुआ। आशा धोखा दे रही थी। एकाएक उनका छोटा लड़का बीमार हुआ और लगातार चार महीने बीमार रहा। पैसा—पैसा करके बचाए हुए रुपये दवादारु में उड़ गए। पंडित शादीराम ने सिर पीट लिया। अब चारों ओर फिर अन्धकार था। उसमें प्रकाश की हल्की—सी किरण दिखाई न देती थी। उन्होंने ठंडी सांस भरी और सोचने लगे—क्या यह ऋण कभी सिर से न उतरेगा ?

लाला सदानन्द अपने पुरोहित की विवशता को जानते थे, और न चाहते थे कि वे रुपये देने का प्रयत्न करें। उन्हें इस रकम की रत्ती—भर भी परवाह न थी। उन्होंने उसके लिए कभी तगादा तक नहीं किया, न कभी शादीराम से इस विषय की बात छोड़ी। इस बात से वे इतना डरते थे, मानो रुपये स्वयं उन्हीं को देने हों; परन्तु शादीराम के हृदय में शान्ति न थी! प्रायः सोचा करते थे कि वे कैसे भले मानस हैं, जो अपनी रकम के बारे में मुझसे बात तक नहीं करते ? खैर, वे कुछ नहीं करते, सो ठीक है; परन्तु इसका तात्पर्य यह थोड़े ही है कि मैं भी निश्चिन्त हो जाऊँ।

उन्हें लाला सदानन्द के सामने सिर उठाने का साहस न था। उसे ऋण के बोझ ने नीचे झुका दिया था। यदि लाला सदानन्द ऐसी सज्जनता न दिखलाते, और शादीराम को बराबर तगादा करके तंग करते, तो उन्हें ऐसा मानसिक कष्ट न होता। हम

अत्याचार का सामना सिर उठाकर कर सकते हैं, परन्तु भलमनसी के सामने आँखें नहीं उठतीं।

एक दिन लाला सदानन्द किसी काम से पंडित शादीराम के घर गए, और उनकी अल्मारी में कई सौ बंगला, हिन्दी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं की मासिक पत्रिकाएँ देखकर बोले, “यह क्या है ?”

पंडित शादीराम ने पैर के अंगूठे से ज़मीन कुरेदते हुए उत्तर दिया, “पुरानी पत्रिकाएँ हैं। बड़े भाई को पढ़ने का बड़ा चाव था, वे प्रायः मँगवाते रहते थे! जब जीते थे, तब किसी को हाथ तक न लगाने देते थे। अब इन्हें कीड़े खा रहे हैं!”

“रद्दी में क्यों नहीं बेच देते ?”

“इनमें चित्र हैं। जब कभी बच्चे रोने लगते हैं, तो एकाध निकालकर दे देता हूँ। इससे उनके आँसू थम जाते हैं।”

लाला सदानन्द ने आगे बढ़कर कहा, “दो—चार परचे दिखाओ तो।”

पंडित शादीराम ने कुछ परचे दिखाए। हर एक परचे में कई—कई सुन्दर और रंगीन चित्र थे। लाला सदानन्द कुछ देर तक उलट—पुलटकर देखते रहे। सहसा उनके हृदय में एक विचित्र विचार उठा। चौंककर बोले, “पंडितजी!”

“कहिए ?”

“ये चित्र कला—सौंदर्य के अति उत्तम नमूने हैं। अगर किसी शौकीन को पसन्द आ जाएँ, तो हज़ार, दो हज़ार रुपये कमा लो।”

पंडित शादीराम ने एक ठण्डी सांस लेकर कहा, “ऐसे भाग्य होते, तो यों धक्का न खाता फिरता।”

लाला सदानन्द बोले, “एक काम करो।”

“क्या ?”

“आज बैठकर, इन पत्रिकाओं में जितनी अच्छी-अच्छी तस्वीरें हैं, सबको छाँटकर अलग कर लो।”

“बहुत अच्छा।”

“जब यह कर चुको, तो मुझे बता देना।”

“आप क्या करेंगे ?”

“मैं इनका अलबम बनाऊँगा, और तुम्हारी ओर से विज्ञापन दे दूँगा। सम्भव है, विज्ञापन किसी शौकीन के हाथ पड़ जाए और तुम चार पैसे कमा लो।”

2

पंडित शादीराम को यह आशा न थी कि कोयलों में हीरा मिल जाएगा। घोर निराशा ने आशा के द्वार चारों ओर से बन्द कर दिए थे। वे उन हतभाग्य मनुष्यों में से थे, जो संसार में असफल, और केवल असफल रहने के लिए उत्पन्न होते हैं। सोने को हाथ लगाते थे, तो वह भी मिट्टी हो जाता था। उनकी ऐसी धारणा ही नहीं, पक्का विश्वास था कि यह प्रयत्न कभी भी सफल न होगा, परंतु लाला सदानन्द के आग्रह से दिन-भर बैठकर तस्वीरें छाँटते रहे। न मन में लगन थी, न हृदय में चाव ; परन्तु

लाला सदानन्द की बात को टाल न सके। शाम को देखा, दो सौ एक—से—एक बढ़िया चित्र हैं। उस समय उन्हें देखकर वे स्वयं उछल पड़े। उनके मुख पर आनन्द की आभा नृत्य करने लगी, जैसे फेल हो जाने का विश्वास करके अपने प्रारब्ध पर रो चुके विद्यार्थी को पास हो जाने का तार मिल गया हो। उस समय वह कैसा प्रसन्न होता है। चारों ओर कैसी विस्मित और प्रफुल्लित दृष्टि से देखता है! यही अवस्था पंडित शादीराम की थी। उन चित्रों की ओर इस प्रकार देखते थे मानो उनमें से प्रत्येक दस—दस रुपये का नोट हो। बच्चों को उधर देखने न देते थे। वे सफलता के विचार में ऐसे प्रसन्न हो रहे थे, जैसे सफलता प्राप्त हो चुकी हो, यद्यपि वह अभी कोसों दूर थी। लाला सदानन्द की आशा उनके मस्तिष्क में निश्चय का रूप धारण कर चुकी थी।

लाला सदानन्द ने चित्रों को अलबम में लगवाया, और कुछ उच्चकोटि के समाचार पत्रों में विज्ञापन दे दिया। अब पण्डित शादीराम हर समय डाकिये की प्रतीक्षा करते रहते थे। रोज़ समझते कि आज कोई चिट्ठी आवेगी। दिन बीत जाता और कोई उत्तर न आता था। रात को आशा सड़क पर धूल की तरह बैठ जाती थी ; परन्तु दूसरे दिन लाला सदानन्द की बातों से टूटी हुई आशा फिर बंध जाती थी, जिस प्रकार गाड़ियाँ चलने से पहले दिन की बैठी हुई धूल हवा में उड़ने लगती है। आशा फिर अपना चमकता हुआ मुख दिखाकर दरवाजे पर खड़ा कर देती थी। डाक का समय होता, तो बाज़ार में ले जाती, और वहाँ से डाकखाने पहुँचाती थी। इसी प्रकार एक महीना बीत गया; परन्तु कोई पत्र न आया। पण्डित शादीराम सर्वथा निराश हो गए, परन्तु फिर भी कभी—कभी सफलता का विचार आ जाता था, जिस प्रकार अंधेरे में जुगनू चमक जाता है। यह जुगनू की चमक निराश हृदयों के

लिए कैसी जीवनदायिनी, कैसी हृदय—हारिणी होती है! इसके सहारे भूले हुए पथिक मंजिल पर पहुँचने का प्रयत्न करते और कुछ देर के लिए अपना दुःख भूल जाते हैं। इस झूठी आशा के अन्दर सच्चा प्रकाश नहीं होता; परन्तु यह दूर के संगीत के समान मनोहर अवश्य होती है। इसमें वर्षा की नमी हो या न हो, परन्तु इससे काली घटा का जादू कौन छीन सकता है ?

आखिर एक दिन शादीराम के भाग्य जागे। कलकत्ता के एक मारवाड़ी सेठ ने पत्र लिखा कि अलबम भेज दो, यदि पसन्द आ गया, तो खरीद लिया जाएगा। मूल्य की कोई चिन्ता नहीं, चीज़ अच्छी होनी चाहिए। यह पत्र उस करवट के समान था, जो सोया हुआ मनुष्य जागने से पहले बदलता है और उसके पश्चात् उठकर बिस्तर पर बैठ जाता है। यह किसी पुरुष की करवट न थी। यह भाग्य की करवट थी। पंडित शादीराम दौड़े हुए लाला सदानन्द के पास पहुँचे, और उन्हें पत्र दिखलाकर बोले, “भेज दूँ ?”

लाला सदानन्द ने पत्र को अच्छी तरह देखा और उत्तर दिया, “रजिस्टर्ड कराकर भेज दो। शौकीन आदमी है, खरीद लेगा।”

“और मूल्य ?”

“लिख दो, एक हज़ार रुपये से कम पर सौदा न होगा।”

कुछ दिन बाद उन्हें उत्तर में एक बीमा मिला। पंडित शादीराम के हाथ—पैर काँपने लगे; परन्तु हाथ—पैरों से अधिक उनका हृदय काँप रहा था। उन्होंने जल्दी से लिफाफा खोला; और उछल पड़े : उसमें सौ—सौ रुपये के दस नोट थे। पहले उनके भाग्य ने करवट ली थी, अब वह पूर्ण रूप से जाग उठा। पंडित

शादीराम खड़े थे, बैठ गए। सोचने लगे, अगर दो हजार रुपये लिख देता तो शायद उतने ही मिल जाते। इस विचार ने उनकी सारी प्रसन्नता किरकिरी कर दी।

3

सन्ध्या के समय वे लाला सदानन्द के पास गए, और पाँच सौ रुपये के नोट सामने रखकर बोले, “परमात्मा को धन्यवाद है कि मुझे इस भार से छुटकारा मिला। अपने रुपये सँभाल लीजिए। आपने जो दया और सज्जनता दिखलाई है, उसे मैं मरणपर्यन्त न भूलूँगा।”

लाला सदानन्द ने विस्मित होकर पूछा, “पंडितजी, क्या सेठ ने अलबम खरीद लिया?”

“जी हाँ, रुपये भी आ गए।”

“एक हजार ?”

“जी हाँ। नहीं तो मुझे निर्धन ब्राह्मण के पास क्या था, जो आपका ऋण चुका देता, परमात्मा ने मेरी सुन ली.....!”

“मैं पहले भी कहना चाहता था; परन्तु कहते हुए हिचकिचाता था कि आपके हृदय को कहीं ठेस न पहुँचे। पर अब मुझे यह भय नहीं है; क्योंकि रुपये आपके हाथ में हैं। मेरा विचार है कि आप ये रुपये अपने पास ही रखें। मैं आपका यजमान हूँ; मेरा धर्म है कि आपकी सेवा करूँ।”

पंडितजी की आँखों में आँसू आ गए, दुपट्टे से पोंछते हुए बोले, “आप जैसे सज्जन संसार में बहुत थोड़े हैं। परमात्मा

आपको चिरंजीवी रखे, परन्तु अब तो मैं ये रुपये न लूँगा। इतने वर्ष आपने माँगे तक नहीं, यह उपकार कोई थोड़ा नहीं है! मुझे उससे उऋण होने दीजिए। ये पाँच सौ रुपये देकर मैं हृदय की शान्ति खरीद लूँगा।”

निर्धन ब्राह्मण की यह उदारता और सचरित्रता देखकर सदानन्द का मनोमयूर नाचने लगा। उन्होंने नोट ले लिए। मनुष्य रुपये देकर भी ऐसा प्रसन्न हो सकता है, इसका अनुभव उन्हें पहली ही बार हुआ। पंडितजी के चले जाने पर उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं, और किसी विचार में मग्न हो गए। इस समय उनके मुखमंडल पर एक विशेष आत्मिक तेज था।

4

छः मास बीत गए। लाला सदानन्द बीमार थे। ऐसे बीमार वे सारी अवस्था में न हुए थे। पंडित शादीराम उनके लिए दिन—रात माला फेरा करते। वे वैद्यन थे, डॉक्टर न थे, वे ब्राम्हण थे, उनकी औषधि माला फेरनी ही थी, और यह काम वह अपनी आत्मा की पूरी शक्ति, अपने मन की पूरी श्रद्धा से करते थे। उनको औषधि की अपेक्षा आशीर्वाद और प्रार्थना पर अधिक भरोसा था।

एक दिन लाला सदानन्द चारपाई पर लेटे थे। उनके पास उनकी बूढ़ी माँ उनके दुर्बल और पीले मुख को देख—देखकर अपनी आँखों के आँसू अन्दर ही अन्दर पी रही थीं। थोड़ी दूर पर, एक कोने में उनकी नवोढ़ा स्त्री घूँघट निकाल खड़ी थी, और देख रही थी कि कोई काम ऐसा तो नहीं जो रह गया हो। पास ही पड़ी हुई एक चौकी पर पंडित शादीराम बैठे रोगी को भगवद्गीता सुना रहे थे।

एकाएक लाला सदानन्द बेसुध हो गए।

पंडितजी ने गीता छोड़ दी, और उठकर उनके सिरहाने बैठ गए। स्त्री गरम दूध लेने के लिए बाहर दौड़ी, और माँ अपने बेटे को घबराकर आवाज़ें देने लगी। इस समय पंडितजी को रोगी के सिरहाने के नीचे कोई कड़ी-सी चीज़ चुभती जान पड़ी। इन्होंने नीचे हाथ डालकर देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। यह सख्त चीज़ वही अलबम था, जिसे किसी सेठ ने नहीं, बल्कि स्वयं लाला सदानन्द ने खरीद लिया था।

पंडित शादीराम इस विचार से बहुत प्रसन्न थे कि उन्होंने सदानन्द का ऋण उतार दिया है; परन्तु यह जानकर उनके हृदय पर चोट-सी लगी कि ऋण उतरा नहीं पहले से दूना हो गया।

उन्होंने अपने बेसुध यजमान के पास बैठे-बैठे एक ठण्डी सांस भरी और सोचने लगे-क्या यह ऋण कभी न उतरेगा ?

कुछ देर बाद लाला सदानन्द को होश आया। उन्होंने पंडितजी से अलबम छीन लिया; और धीरे से कहा, “यह अलबम सेठ साहब से अब हमने मंगवा लिया है।”

पंडितजी जानते थे कि यजमान जी झूठ बोल रहे हैं; परन्तु वे उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक सज्जन, अधिक उपकारी और अधिक ऊँचा समझने लगे थे।

.....

3. सबक

गुरजाड़ अप्पाराव

परिचय :- श्री अप्पाराव जी आधुनिक तेलुगु साहित्य के युग निर्माता हैं। आप व्यवहारिक तेलुगु भाषा को साहित्यिक रूप प्रदान करनेवाले क्रांतिकारी लेखक माने जाते हैं। आप सफल कवि तथा समाज सुधारक भी हैं। आपके कन्या शुल्कम नाटक तथा मुत्यालसरालु कविता संग्रह अत्यंत लोकप्रिय रचनाएँ हैं जिन्होंने आपकी ख्याति में चार चाँद लगा दिये। आपकी कई कहानियाँ तथा निबंध भी प्रकाशित हो चुके हैं। भावी पीढ़ी को मार्गदर्शन करनेवाली आपकी कई रचनाएँ आधुनिक तेलुगु साहित्य के अमूल्य रत्न माने जाते हैं।

प्रस्तुत कहानी सबक एक हास्य पूर्ण रचना है जिसमें अकसर पति पत्नियों के बीच में एक दूसरे के प्रति होनेवाली छोटी मोटी शंकाओं तथा नाराजगी का सुंदर वर्णन हुआ है। अंत में उनके पश्चाताप का चित्रण भी पाठकों को मुग्ध कर देता है। गोपालराव प्रति दिन देर से घर पहुँचता था जिससे उसकी पत्नी नाराज हो जाती है। एक दिन अपनी चिट्ठी में मायके जाने की सूचना देकर घर के किसी कोने में छिप जाती है। गोपालराव घर लौटकर चिट्ठी पढ़ लेता है और अपने व्यवहार से बहुत चिंतित होता है। उसके पश्चाताप को देखकर कमरे के अंदर छिपी हुई पत्नी की मधुर हंसी सुनाई पड़ती है।

कहानी :- “दरवाजा खोलो! दरवाजा खोलो!”

मगर दरवाजा नहीं खोला गया। एक मिनिट के लिए वह मौन खड़ा रहा।

इतने में कमरे की दीवार की घड़ी ने एक बजाया।

“.....आज मुझसे बड़ी देर हो गयी है। मेरी अक्ल घास चरने गयी थी। कल से मैं ठीक वक्त पर घर लौटूँगा। एंटी—नाच आन्दोलन का हिमायती होकर भी क्या मुझे नाचनेवाली के पास जाना चाहिए था ? उसका गाना सुनते—सुनते न जाने मेरा मन कहाँ खो गया था। गाना सुनने के बाद मेरा मन लौटने का नाम नहीं ले रहा था। उसकी सुन्दरता पर रीझ गया। कितना अनर्थ हो गया! मुझे एक क्षुद्र व्यक्ति की तरह गाना खतम होने तक वहीं क्यों बैठना था ? फिर किसी बहाने उससे बात करने की आसक्ति मेरे मन में क्यों उठनी चाहिए थी? देखो जी! अब कान पकड़ता हूँ। उसका गाना सुनने के लिए मैं कभी उसके पास नहीं जाऊँगा। यह मेरा अन्तिम निर्णय है! जोर से पुकारूँ तो शायद कमलिनी जाग पड़े! धीरे से दरवाजा खटखटा कर रामुडू को जगा दूँ! फिर चुपचाप जाकर एक भद्र व्यक्ति का ढोंग रचाऊँगा और उसकी बगल में लेट जाऊँगा....।”

गोपालराव ने जैसे ही दरवाजे पर हाथ रखा कि दरवाजा खुल गया। यह क्या? उसने सोचा और दरवाजा खोल दिया। हॉल में गया। फिर वहाँ से कमरे में गया। वहाँ रोशनी नहीं थी। उसने सोचा पहले यह जानना जरूरी है कि कमलिनी सो रही है अथवा जागी हुई है। जेब से सलाई जलाई। खाट पर कमलिनी दिखाई नहीं दी। वह अवाक् रह गया। सलाई नीचे गिरा दी। कमरा अन्धकार से भर गया। उसके मन में भी अन्धकार छा गया। उसके मन में कई तरह की शंकाओं और समाधानों की उदेड़बुन होने लगी, फिर अदृश्य। मन व्याकुलता से भर गया। उसे बड़ी खीज हुई, अपनी नासमझी पर या कमलिनी की अनुपस्थिति पर!

उसे बड़ा गुस्सा आ रहा था। वह बाहर आ गया। प्रवेश द्वार के पास आकर आवाज़ दी। न नौकरानी ने जवाब दिया, और न ही रामुडु ने। “इनको फाँसी की सज़ा मिलनी चाहिए।” गोपालराव चिल्ला उठा।

फिर सोने के कमरे में गया। लालटेन जलाई। कमरे में देखा। कमलिनी दिखाई नहीं दी। आँगन में जाकर बाहर का दरवाजा खोलकर देखा तो रामुडु सड़क के बीच में खड़ा आसमान की तरफ मुँह किये चुरुट पी रहा था, जैसे आसमान के तारे गिन रहा हो। गोपालराव गुस्से में आग बबूला गया। रामुडु ! इधर आ! गोपालराव ने उसे बुलाया। “रामुडु ने भौंचक्का हाकर चुरुट फेंक दी और डरते-डरते कहा-आया बाबूजी!”

“कहाँ है रे, तेरी माँ ?”

“जी! वह तो मेरे घर पर है!”

“अरे, गधा कहीं का! तेरी माँ नहीं, तेरी मालकिन?”

“मालकिन ? वे तो अपने कमरे में सो रही होंगी, बाबू जी!”

“दुनिया को क्या हो गया, बाबूजी।”

“तेरा सर! तू चुप रह।”

“महाशय! गोपालराव पढ़ने लगा—“पिछले दस दिनों से आप रात को कब घर लौटते हैं मैं नहीं जानती! हाँ, आपने किसी सभा-सोसाइटी में जाने की बात जरूर कही थी। आपने यह भी बताया था कि देश-कल्याण के किसी आन्दोलन में आप भाग ले रहे हैं, अपनी नींद हराम करके! किन्तु सचाई मैंने अपनी सहेलियों

द्वारा जान ली है। घर पर मेरे रहने के कारण ही आपको झूठ बोलना पड़ा। अगर मैं अपने मायके चली जाऊँ तो आपकी आजादी में रुकावट बनकर नहीं पड़ेगी और न ही आपको झूठ बोलने की जरूरत ही रहेगी। मैंने सोचा, रोज-रोज आप से झूठ बुलवाना और आपके रास्ते में रुकावट बनकर रहना ठीक नहीं है; और एक पत्नी के नाते ऐसा करना अनुचित है? आज रात को मैं अपने मायके जा रही हूँ आप प्रसन्न रहें। यदि आपके दिल में मेरे लिए कोई स्थान हो तो कृपा भाव बनाये रखें।”

पत्र पढ़ना समाप्त कर गोपालराव ने एक लम्बी सांस ली।
कहा—

“मैं कितना पशु ठहरा!”

“बाबूजी! आप यह क्या फरमा रहे हैं?”

“मैं निरा पशु हूँ!”

रामुडु बड़े प्रयत्न से अपनी हँसी को रोक पाया!

“बड़ी सुशील थी! अच्छी पढ़ी-लिखी थी। बड़ी विनय-सम्पन्न थी। मेरे दुर्व्यवहार का अच्छा दण्ड मिला।”

“मालकिन ने क्या किया, बाबूजी?”

“वह घर में नहीं है।”

यह सुनते ही रामुडु सन्न रह गया। जैसे ही उसने अन्दर कदम रखा, गोपालराव ने कसकर दो धूँसे जड़ दिये। “हाय! मर गया बाबू जी!” चिल्लाता रामुडु ज़मीन पर लुढ़क गया।

गोपालराव दिल का बड़ा नरम था। फौरन अपने किये पर उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। आवेश में आकर उसने यह किया था। रामुडू को हाथ का सहारा देकर उठाया, पीठ सहलायी और उसे घर के अन्दर ले गया।

गोपालराव बहुत परेशान था। कुर्सी पर बैठते हुए उसने पूछा—“क्यों रे रामुडू! आखिर यह गयी कहाँ!”

“मुझे तो बड़ा आश्चर्य लग रहा है, बाबू जी।”

“कहीं वह अपने मायके तो नहीं गयी?”

“हाँ बाबू जी! यह हो भी सकता है! और पढ़ी—लिखी होने से यही तो होता है बाबू जी!”

“अरे मूर्ख! पढ़ने—लिखने का मूल्य तुझे क्या मालूम?” गोपालराव ने डाँट बतायी। फिर वह अपने दोनों हाथों से माथा थामकर सोचने लगा कि कमलिनी कहाँ गयी होगी कि अचानक उसकी नज़र टेबिल पर रखी कमलिनी की चिट्ठी पर पड़ी। उसे हाथ में लेकर वह पढ़ने लग गया।

“महाशय!”

“वाह री दुनिया! ‘प्रियतम’ की जगह पर ‘महाशय’!”

“वह अपने मायके चली गयी है। मुझे तो ताज्जुब हो रहा है, वह तुमसे कुछ कहे—सुने बगैर यहाँ से कैसे चली गई!”

रामुडू दो कदम पीछे हटा, बोला—“मुझे जरा झपकी आ गयी थी, बाबूजी! शायद वह आपसे रूठ गयी होंगी! बाबू जी.....! आप

बुरा न मानें तो एक बात कहूँ—औरत का इतना साहस? बगैर आपसे पूछे मायके चली जाती है? औरत की जात जो है न, उसे लातों से समझाना पड़ता है, बातों से नहीं! मगर आपने तो बीबीजी को खूब पढ़ाया—लिखाया और सिर चढ़ा लिया है। ऐसी हालत में वह आपकी बात क्यों मानने लगी?”

गोपालराव से रहा नहीं गया।

“अरे मूर्ख! भगवान की सृष्टि में अगर कोई श्रेष्ठ वस्तु है तो वह है पढ़ी—लिखी स्त्री! शिवाजी ने पार्वती को अर्धांग याने अपने शरीर का आधा हिस्सा बाँट के दिया। अंग्रेजों ने पत्नी को बेटर हाफ़ की संज्ञा दी है। यानी पत्नी का स्थान पति से भी ऊँचा है। समझे?”

“मैंने कुछ भी समझा नहीं, बाबूजी!”

रामुडु को अपनी हँसी को रोकना बहुत मुश्किल हो रहा था।

“क्यों रे! तुम्हारी बच्ची स्कूल जा रही है न? विद्या की क्या महत्ता है, तुझे आगे जाकर मालूम हो जाएगा। ठीक है। यह बात रहने दो। हम दोनों में से किसी को चन्द्रवरम् जाना होगा। हाँ, मुझे तो यहाँ काम है, चार दिन तक मैं बाहर नहीं जा सकता। तुम तो हमारे घर के पुराने नौकर ठहरे। जाकर कमलिनी को ले आना। वहाँ जाकर कमलिनी से क्या कहेगा?”

“बाबूजी! मुझे क्या मालूम अम्मा से क्या बोलना है। आपने तो मेरी हड्डी—पसली तोड़ दी!”

“अरे! उस झापड़ की बात? उसे भूल जा? ले! डसके एवज में ये दो रुपये ले ले। फिर से यह बात जबान पर नहीं लाना। भूल से भी इसका जिक्र कमलिनी से नहीं करना! समझे!”

“ठीक है, बाबूजी!”

“जो बातें कमलिनी से तुझे कहनी हैं, वह सुनाता हूँ, सुनो, कान खोल कर!.....मालिक की बुद्धि ठिकाने पर आ गई है! अब आगे से कभी भी नाचनेवाली का गाना सुनने नहीं जाएँगे। भूल से भी रात को बाहर कदम नहीं रखेंगे। इसे सच मानिये। आपके पाँव पर पड़ कर आपसे बिनती करने के लिए मुझे भेजा है। उनके दोषों का जिक्र किसी के सामने न कीजिएगा। जल्दी से जल्दी दो—एक दिन के अन्दर घर लौट आइएगा। आपके बगैर उनका जीवन दूभर हो गया है। एक—एक पल एक—एक युग के समान लग रहा है। एक—एक दिन उनके लिए पहाड़ समान लग रहा है।”.....इस तरह से सारी बातें उसे समझा देना। समझे ?

“समझ गया बाबूजी!”

“क्या समझा है, ज़रा बोल तो!”

रामुडु बगले झाँकने लगा।

“बाबूजी! आपने जो कुछ कहा, ठीक ही कहा, मगर उसका एक शब्द भी फिर से बोलना मुझे नहीं आता! मैं तो अपने सीधे—सादे शब्दों में इतना ही कह पाऊँगा—मालकिन! मेरी बात सुनिए। आपके यहाँ नौकरी करते—करते मेरे बाल पक गये हैं। औरत को चाहिए कि मर्द की बात चुपचाप मान ले। मेरी सलाह आप नहीं मानेंगी तो बड़े मालिक की तरह ये छोटे मालिक भी

नाचनेवाली को अपने यहाँ रख लेंगे। एक बात और मैं आपके कान में डालूँ! सोने जैसे दमकते शरीरवाली एक बहुत ही सुन्दर नाचनेवाली शहर में आयी हुई है। मालिक का बैलगाम मन जाने क्या कर बैठे। फिर आपकी जैसी मर्जी! यह ठीक है न बाबूजी?”

“अरे! हरामजादे!” गेपालराव झल्ला उठा। कुर्सी पर से उठ गया। वह बड़े गुस्से में था।

इतने में खाट के नीचे से मन को हरनेवाली मधुर हँसी का फव्वारा फूटा और साथ ही चूड़ियों की झनझनाहट की मोहक ध्वनि सुनाई दी।

अनुवाद: दण्डमुडि महीघर

.....

4. अब्बूखाँ की बकरी

जाकिर हुसैन

परिचय :- प्रसिद्ध समाज सेवी, गाँधीवादी, राष्ट्रपति के पद को शोभित किया है। जामिय मिलियाँ शिक्षण संस्था के आधार स्तंभ, महात्मा जी के सिद्धान्तों को साकार करने वाले शिक्षा विद्।

इस कहानी में स्वतंत्रता के सही मूल्य का परिचय दिया है। आजकल कई लोगों की स्वतंत्रता उछंखलता के लिए कभी कभी मार्ग खोल देती है तो उसका परिणाम विपरीत होता है।

यह शिक्षा प्रद कहानी है। सरल सुबोध शैली है।

.....

कहानी :- हिमालय पहाड़ का नाम तो तुमने सुना ही होगा। उससे बड़ा पहाड़ दुनियाँ में कोई नहीं है। हजारों मील फैलता चला गया है और ऊँचा इतना है कि इसकी ऊँची चोटियों पर कोई आदमी आसानी से नहीं पहुँच सकता है। इस पहाड़ के अन्दर बहुत-सी बस्तियाँ भी बसी हैं। ऐसी ही एक बस्ती अलमोड़ा है।

अलमोड़ा में एक बड़े मियाँ रहते थे। उनका नाम था अब्बूखाँ। उन्हें बकरियाँ पालने का बहुत शौक था। अकेले आदमी थे; बस, एक-दो बकरियाँ रखते, दिन-भर उन्हें चराते। उनके अजीब-अजीब नाम रखते, किसी का कल्लू, किसी का गुजरी, किसी का हुकमा। इनसे न जाने क्या-क्या बातें करते और शाम के वक्त बकरियों को लाकर घर में बाँध देते। अलमोड़ा पहाड़ी जगह है, इसलिए अब्बूखाँ की बकरियाँ भी पहाड़ी नस्ल की होती थीं।

अब्बूखाँ गरीब थे, बड़े बदनसीब! उनकी सारी बकरियाँ कभी न कभी रस्सी तुड़ाकर रात को भाग जाती थीं। पहाड़ी बकरी बँधे—बँधे घबड़ा जाती हैं। ये बकरियाँ भागकर पहाड़ में चली जाती थीं। वहीं कहीं एक भेड़िया रहता था, वह उन्हें खा जाता था। मगर अजीब बात है, न अब्बूखाँ का प्यार, न शाम के दाने का लालच, उन बकरियों को भागने से रोकता था, न भेड़िये का डर। इसकी वजह शायद यह हो कि पहाड़ी जानवरों के मिजाज में आज़ादी की बहुत प्यास होती है। यह अपनी आज़ादी किसी दाम देने को राज़ी नहीं होते, दुख और मुसीबतों को सहकर भी आज़ाद रहने को आराम और आनन्द की कैद ही अच्छा जानते हैं।

जहाँ कोई बकरी भाग निकली और अब्बूखाँ बेचारे सिर पकड़कर बैठ गये। उनकी समझ में ही न आता था कि हरी—हरी घास में उन्हें खिलाता हूँ, छिपा—छिपाकर पड़ोसियों के धान के खेत में उन्हें छोड़ देता हूँ, शाम को दाना देता हूँ, मगर फिर भी वह कम्बख्त नहीं ठहरतीं और पहाड़ में जाकर भेड़िये को अपना खून पिलाना पसन्द करती हैं।

जब अब्बूखाँ की बहुत—सी बकरियाँ भाग गयीं, तो बेचारे बहुत उदास हुए और कहने लगे—अब बकरी न पालूँगा। जिन्दगी के थोड़े दिन और हैं, बे—बकरियों ही के कट जाएँगे।

मगर तनहाई बुरी चीज़ है, थोड़े दिन तो अब्बूखाँ बे—बकरियों के रहे, फिर न रहा गया। एक दिन कहीं से एक बकरी खरीद लाये। यह बकरी अभी बच्चा ही थी, कोई साल—सवा साल की होगी। अब्बूखाँ ने सोचा कि कम—उम्र की बकरी लूँगा तो शायद

हिल जाए और उसे जब पहले ही से अच्छे—अच्छे चारे—दाने की आदत पड़ जाएगी, तो फिर वह पहाड़ का रुख न करेगी।

यह बकरी थी बहुत खूबसूरत, रंग उसका बिलकुल सफ़ेद था। बाल लंबे—लंबे थे, छोटे—छोटे, काले—काले सींग ऐसे मालूम होते थे कि किसी ने आबनूस की काली लकड़ी में खूब मेहनत से तराश कर बनाये हैं। लाल—लाल आँखें तुम देखते तो कहते कि अरे, यह बकरी हमने ली होती। वह बकरी देखने ही में अच्छी न थी, मिज़ाज की भी बहुत अच्छी थी। प्यार से अब्बूखाँ के हाथ चाटती थी। दूध चाहे तो कोई बच्चा दुह ले, न लात मारती थी, न दूध का बर्तन गिराती। अब्बूखाँ तो बस, उसपर आशिक़—से हो गये थे। इसका नाम चाँदनी रखा था और दिन—भर उससे बातें करते रहते थे। कभी—कभी चाचा घसीटाखाँ का किस्सा उसे सुनाते थे, कभी मामू नत्थू का।

अब्बूखाँ ने यह सोचकर कि बकरियाँ शायद मेरे तंग आंगन में घबड़ा जाती हैं, अपनी उस चाँदनी बकरी के लिए नया प्रबन्ध किया था। घर के बाहर उनका एक छोटा—सा खेत था। उसके चारों तरफ उन्होंने न जाने कहाँ—कहाँ से काँटे जमा करके डाले थे कि कोई उसमें न आ सके। उसके बीच में चाँदनी को बाँधते थे और रस्सी खूब लंबी रखी थी कि खूब इधर—उधर घूम सके। इस तरह चाँदनी को अब्बूखाँ के यहाँ खासा ज़माना गुज़र गया, और अब्बूखाँ को यकीन हो गया कि आखिर को एक बकरी तो हिल गयी, अब यह न भागेगी।

मगर अब्बूखाँ धोखे में थे। आज़ादी की ख़्वाहिश इतनी आसानी से दिल से नहीं मिटती। पहाड़ और जंगल में रहनेवाले आज़ाद जानवरों का दम घर की चहार—दीवारी में घुटता है, तो

काँटों से घिरे हुए खेत में भी उन्हें चैन नसीब नहीं होता। क़ैद—क़ैद सब एक—सी। थोड़े दिन के लिए चाहे ध्यान बँट जाए, मगर फिर पहाड़ और जंगल याद आते हैं और क़ैदी अपनी रस्सी तुड़ाने की फ़िक्र करता है। अब्बूखाँ का ख्याल ठीक न था कि चाँदनी पहाड़ की हवा भूल गयी है।

एक दिन सुबह जब सूरज अभी पहाड़ के पीछे ही था कि चाँदनी ने पहाड़ की तरफ़ नज़र की। मुँह जो जुगाली की वजह से चल रहा था, रुक गया और चाँदनी ने दिल में कहा—वह पहाड़ की चोटियाँ कितनी खूबसूरत हैं, वहाँ की हवा और यहाँ की हवा का क्या मुकाबिला। फिर वहाँ उछलना, कूदना, ठोकरें खाना और यहाँ हर वक्त बँधे रहना। गर्दन में आठों पहर यह रस्सी! ऐसे घरों में गधे और खच्चर भले ही चुग लें, पर हम बकरियों को तो ज़रा बड़ा मैदान चाहिए।

इस ख्याल का आना था और चाँदनी अब वह पहली चाँदनी ही न थी। न उसे हरी—हरी घास अच्छी लगती थी, न पानी मज़ा देता था। रोज़—ब—रोज़ दुबली होने लगी। दूध घटने लगा। हर वक्त मुँह पहाड़ की तरफ़ रहता। रस्सी को खींचती और चिल्लाती। अब्बूखाँ समझ गये, हो न हो, कोई बात ज़रूर है, लेकिन यह समझ में नहीं आता था कि क्या? एक दिन चाँदनी ने उनकी तरफ़ मुँह फेरा और अपनी बकरियोंवाली ज़बान में कहा—अब्बूखाँ मियाँ, मैं अब तुम्हारे पास रहूँगी, तो मुझे बड़ी बीमारी हो जाएगी। मुझे तो तुम पहाड़ ही में चली जाने दो।

अब्बूखाँ बकरियों की ज़बान समझने लगे थे। चिल्लाकर बोले—या अल्लाह! यह भी जाने को कहती है, यह भी! हाथ के

थरथराने से मिट्टी की लुटिया, जिसमें दूध दुहा था, हाथ से गिरी और चूर-चूर हो गयी।

अब्बूखाँ वहीं घास पर बकरी के पास बैठ गये और ग़मगीन आवाज़ से बोले—क्यों बेटी चाँदनी, तू भी मुझे छोड़ना चाहती है?

चाँदनी ने जवाब दिया—हाँ, अब्बूखाँ मियाँ, चाहती तो हूँ।

अब्बूखाँ—अरे, क्या तुझे चारा नहीं मिलता या दाना पसन्द नहीं? बनिये ने घुने दाने मिला दिये हैं? मैं आज ही और दाना ले आऊँगा।

चाँदनी—नहीं नहीं मियाँ, दाने की कोई तकलीफ़ नहीं।

अब्बूखाँ—तो फिर क्या रस्सी छोटी है, मैं और लंबी कर दूँगा।

चाँदनी ने कहा—इससे क्या लाभ?

अब्बूखाँ—तो फिर क्या बात है? तू चाहती क्या है?

चाँदनी—कुछ नहीं, बस, मुझे तो पहाड़ में जाने दो।

अब्बूखाँ ने कहा—अरी कम्बख्त! तुझे यह खबर है कि वहाँ भेड़िया रहता है? वह जब आएगा, तो क्या करेगी?

चाँदनी ने जवाब दिया—अल्लाह ने दो सींग दिये हैं, उनसे उसे मारूँगी।

अब्बूखाँ—हाँ हाँ, ज़रूर! भेड़िये पर तेरे सींगों ही का असर होगा। वह तो मेरी कई बकरियाँ हड़प कर चुका है। उनके सींग तुझसे बहुत बड़े थे। तू तो कल्लू को जानती नहीं थी, वह यहाँ पिछले साल थी। बकरी काहे को थी, हिरन थी, हिरन। काला

हिरन। रात—भर सींगों से भेड़िये के साथ लड़ी, मगर फिर सुबह होते—होते उसने दबोच ही लिया और खा गया।

चाँदनी ने कहा—अरे रे रे। बेचारी कल्लू, मगर खैर, अब्बूखाँ मियाँ, इससे क्या होता है? मुझे तो तुम पहाड़ में जाने ही दो।

अब्बूखाँ—कुछ झुँझलाये और बोले—या अल्लाह, यह भी जाती है। मेरी एक बकरी और कम्बख्त भेड़िये के पेट में जाए, मगर नहीं नहीं, मैं इसे तो ज़रूर बचाऊँगा। कम्बख्त, अहसान—फ़रामोश, तेरी मर्जी के खिलाफ़ तुझे बचाऊँगा। अब तो तेरा इरादा मालूम हो गया है। अच्छा, बस, चल! तुझे कोठरी में बाँधा करूँगा, नहीं तो मौका पाकर चल देगी।

अब्बूखाँ ने आखिर चाँदनी को एक कोने की कोठरी में बंद कर दिया और ऊपर से जंजीर चढ़ा दी; मगर गुस्से में कोठरी की खिड़की बंद करना भूल गये। इधर उन्होंने जंजीर चढ़ायी, उधर चाँदनी खिड़की में से उचककर बाहर। यह जा, यह जा।

चाँदनी पहाड़ पर पहुँची, तो उसकी खुशी का क्या पूछना था! पहाड़ पर पेड़ उसने पहले भी देखे थे, मगर आज उनका और ही रंग था। उसे ऐसा मालूम होता था कि सबके सब खड़े हुए उसे बधाई दे रहे हैं कि फिर हममें आ मिली।

इधर—उधर सेवती के फूल मारे खुशी के खिलखिलाकर हँस रहे थे। कहीं ऊँची—ऊँची घास उससे गले मिल रही थी। मालूम होता था कि सारा पहाड़ मारे खुशी के मुस्कुरा रहा है। और अपनी बिछुड़ी हुई बच्ची के वापस आने पर फूला नहीं समाता। चाँदनी की खुशी का हाल कोई क्या बतावे? न चारों तरफ काँटों की बाड़, न खूँटा, न रस्सी। और चारा—वे जड़ी—बूटियाँ! अब्बूखाँ

गरीब अपनी सारी मुहब्बत और स्नेह के होते हुए भी न ला सकते।

चाँदनी कभी इधर उछलती, कभी उधर! कभी चट्टान पर है, कभी खड्ड में। इधर ज़रा फिसली, फिर सँभली। एक चाँदनी के आने से सारे पहाड़ में रौनक—सी आ गयी थी। ऐसा मालूम होता था कि अब्बूखाँ की दस—बारह बकरियाँ छूटकर यहाँ आ गयी हैं।

एक दफ़ा घास पर मुँह मारकर जो ज़रा सिर उठाया तो चाँदनी की नज़र अब्बूखाँ के मकान और उस काँटोंवाले घेरे पर पड़ी। उन्हें देखकर यह खूब हँसी और दिल में कहने लगी—कितना ज़रा सा मकान है। मैं इतने दिन उसमें कैसे रही! इसमें आखिर समाती कैसे थी। पहाड़ की चोटी पर से उस नन्हीं—सी जान को नीचे सारी दुनिया हेच नज़र आती थी।

चाँदनी के लिए यह दिन भी अजीब था। दोपहर तक इतनी उछल—कूद की जो शायद सारी उम्र में न की होगी। दोपहर ढले, उसे पहाड़ी बकरियों का एक गल्ला दिखायी दिया। गल्ले की बकरियों ने उसे खुशी—खुशी अपने पास बुलाया और उससे हाल—अहवाल पूछा। गल्ले में कुछ जवान बकरे भी थे, उन्होंने भी चाँदनी की बड़ी खातिर—तवाज़ा की, बल्कि उसमें एक बकरा था, ज़रा काले—काले रंग का, जिसपर कुछ सफ़ेद टप्पे थे। यह चाँदनी को भी अच्छा लगा और यह दोनों बहुत देर तक इधर—उधर फिरते रहे। उनमें न जाने क्या—क्या बातें हुईं। और कोई तो था नहीं, एक सोता पानी का बह रहा था, उसने सुनी होगी।

कभी कोई वहाँ जाए और उस सोते से पूछे, तो शायद कुछ पता लगे। और फिर भी क्या खबर, वह सोता भी शायद न बताए।

खैर, बकरियों का गल्ला तो न मालूम किधर चला गया। वह जवान बकरा भी इधर—उधर घूमकर अपने साथियों में जा मिला।

शाम का वक्त हुआ। ठंडी हवा चलने लगी। सारा पहाड़ लाल—सा हो गया और चाँदनी ने सोचा, ओह हो, अभी से शाम!

नीचे अब्बूख़ाँ का घर, और वह काँटोंवाला घेरा दोनों कुहरे में छिप गये। नीचे कोई चरवाहा अपनी बकरियों को बाड़े में बन्द करने के लिए जा रहा था, उनकी गर्दन की घंटियाँ बज रही थीं। चाँदनी उस आवाज़ को खूब पहचानती थी। उसे सुनकर उदास—सी हो गयी। होते—होते अँधेरा होने लगा और पहाड़ में एक तरफ़ से आवाज़ आयी—खूँ—खूँ।

यह आवाज़ सुनकर चाँदनी को भेड़िये का ख्याल आया। दिन—भर एक दफ़ा भी उसका ध्यान उधर न गया था। पहाड़ के नीचे से एक सीटी और बिगुल की आवाज़ आयी। यह बेचारे अब्बूख़ाँ थे, जो आखिरी कोशिश कर रहे थे, कि उसे सुनकर चाँदनी फिर लौट आये। इधर से वह कह रहे थे, लौट आ, लौट आ। उधर से दुश्मन—जान भेड़िये की आवाज़ आ रही थी।

चाँदनी के जी में कुछ तो आयी कि लौट चले, लेकिन उसे खूँटा याद आया, रस्सी याद आयी, काँटों का घर याद आया और उसने सोचा कि उस जिन्दगी से यहाँ की मौत अच्छी। आखिर को सीटी और बिगुल की आवाज़ बन्द हो गयी। पीछे से पत्तों की

खड़खड़ाहट सुनायी दी। चाँदनी ने मुड़कर देखा तो दो आँखें अंधेरे में चमक रही थीं। भेड़िया पहुँच गया था।

भेड़िया जमीन पर बैठा था, नज़र बेचारी बकरी पर जमी थी। बकरी ने जो उसकी तरफ़ देखा, तो वह मुस्कुराया और बोला—ओह ओ! अब्बूखाँ की बकरी है। खूब खिला—पिलाकर मोटा किया है। यह कहकर उसने अपनी लाल—लाल ज़बान अपने नीले—नीले होंठों पर फेरी। चाँदनी को कल्लू की कहानी याद आयी। उसने सोचा कि मैं क्यों रात—भर लड़कर सुबह जान दूँ? अभी क्यों न अपने को सुपुर्द कर दूँ? मगर फिर ख्याल किया कि नहीं। अपना सिर झुकाया, सिंग आगे को किये और पैतरा बदलकर भेड़िये के सामने आयी कि बहादुरों का यही स्वभाव है।

कुछ देर जब गुज़र गयी तो भेड़िया बढ़ा। चाँदनी ने भी सींग सँभाले और वह हमले किये कि भेड़िया ही जानता होगा। दसों मरतबा उसने भेड़िये को पीछे रेल दिया। सारी रात इसीमें गुज़री। कभी—कभी चाँदनी ऊपर आसमान की तरफ़ देख लेती और सितारों से आँखों—आँखों में कह देती—ऐ! कहीं इसी तरह सुबह हो जाए!

सितारे एक—एक करके ग़ायब हो गये। चाँदनी ने आखिरी वक्त में अपना ज़ोर दुगुना कर दिया। भेड़िया भी तंग आ गया था कि दूर से एक रोशनी—सी दिखायी दी। एक मुर्गे ने कहीं से बाँग दी। चाँदनी ने दिल में कहा कि अल्लाह तेरा शुक्र है; मैंने अपने बस—भर मुक़ाबिला किया, अब तेरी मरज़ी।

चाँदनी बेदम ज़मीन पर गिर पड़ी। उसका सफ़ेद बालों का लिबास खून से बिलकुल सुर्ख़ था। भेड़िये ने उसे दबोच लिया और खा गया।

और, दरख्त पर चिड़ियाँ बैठी देख रही थीं। उनमें इसपर बहस हो रही है कि जीत किसकी हुई? बहुत कहती हैं कि भेड़िया जीता। एक बूढ़ी—सी चिड़िया है, वह कहती है—चाँदनी जीती।

.....

5. मुक्ति

मन्नू भण्डारी

परिचय :- मन्नू भंडारी का जन्म मध्य प्रदेश के मानपुरा में 1931 में हुआ। बनारस विश्वविद्यालय से एम.ए. पास करने के पश्चात् मिराण्डा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य सम्हाला। प्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्रयादव जी ने सन् 1959 में विवाह किया। स्वस्थ सहृदयपूर्ण व्यवहार की मन्नू जी अध्ययन अध्यापन में गहरी रुचि रखती हैं। समकालीन महिला कथाकारों में मन्नू जी का स्थान बेजोड़ है।

मन्नू की कहानियाँ—समाज के उस मुख को अत्यंत प्रामाणिकता से दर्शाते जाते हैं, जिन्हें हर व्यक्ति अपने आंतरिक रूप में जीता है। वे बहुत ही सहज ढंग से जीवन की संवेदना को छूने का प्रयत्न करती हैं। राजेन्द्र यादव के शब्दों में मन्नू की कहानियों में भावात्मक अपील है, जो उन्हें श्रेष्ठ कहानी लेखकों की कोटि में ठहराता है। अपने चारों ओर फैले समाज के प्रति, जन—जीवन के प्रति एक विशिष्ट लगाव या सहानुभूति हम लेखिका में पाते हैं। और यह सहानुभूति कहीं आत्मसंघर्ष के रूप में तो कहीं जीवन की विसंगतियों के रूप में, तो कहीं नारी की विशिष्ट मानसिक परिवेश के रूप में, सजह इमानदारी से अभिव्यक्त है। नारी के प्रति लेखिका का दृष्टिकोण, पुरुष विरोधी, आकामक रूप को न अपनाकर, सहज मानववादी के चौखटे में प्रस्तुत है। कहानियों में प्रस्तुत मूल कथा संवेदना पर समीक्षा करते, रामदरशमिश्र लिखते हैं—“मन्नू भंडारी ने, मध्यवर्गीय परिवारों में पनपते नर—नारी सम्बन्धों को कलात्मक ढंग से रूपायित किया

है। पारिवारिक संकीर्णताओं से उत्पन्न प्रतिक्रियाओं को कहानी में रूपायित करने में मन्नू जी की लेखनी क्रियाशील रही है।”

कहानी :-

.....और अंततः ब्रह्म मुहूर्त में बाबू ने अपनी आखिरी साँस ली। वैसे पिछले आठ-दस दिन से डॉक्टर सक्सेना परिवार वालों से बराबर यही कह रहे थे- “प्रार्थना कीजिए ईश्वर से कि वह अब इन्हें उठा ले.....वरना एक बार अगर कैंसर का दर्द शुरू हो गया तो बिल्कुल बर्दाशत नहीं कर पाएँगे ये।” परिवार वालों के अपने मन में भी चाहे यही सब चल रहा हो, पर ऊपर से तो सब एक दुखद मौन ओढ़े खड़े रहते, बिल्कुल चुपचाप! तब सबको आश्वस्त करते हुए डॉ.सक्सेना ही फिर कहते.....

“वैसे भी सोचो तो इससे अधिक सुखद मौत और क्या हो सकती है भला? चारों बच्चे सेटिल ही नहीं हो गए, कितना ध्यान भी रखते हैं पिता का.....वरना आज के ज़माने में तो.....बड़े भाग से मिलता है ऐसा घना-गुँथा संयुक्त परिवार, जिसके आधे से ज़्यादा सदस्य तो इसी शहर में रहते हैं और बराबर जो अपनी ड्यूटी निभाते ही रहे हैं, कहीं कोई चूक नहीं, कोई कमी नहीं।”

परिवार के लोग चुप। मेरा मन ज़रूर हुआ कि उन्हीं की बात आगे बढ़ाते हुए इतना और जोड़ दूँ कि कितनों को मिलते हैं आप जैसे डॉक्टर, जो इलाज करते-करते परिवार के सदस्य ही बन गए.....बाबू के तीसरे बेटे! पर कहा नहीं गया। मैं भी परिवार वालों के साथ चुप ही खड़ी रही।

“और सबसे बड़ी बात तो यह कि कितनों को नसीब होती है ऐसी सेवा करने वाली पत्नी? मैं तो हैरान हूँ उनका सेवा-भाव

देखकर। आखिर उम्र तो उनकी भी है ही.....उसके बावजूद पिछले आठ महीनों से उन्होंने न दिन को दिन गिना, न रात को रात! बस लगातार.....” और बिना वाक्य पूरा किए ही मुड़कर वे जाने लगते। पता नहीं क्यों मुझे लगता, जैसे मुड़ते ही वे अम्मा के इस सेवा-भाव के प्रति कहीं नत-मस्तक हुए हों और मैं सोचती कि चलो, कम से कम एक आदमी तो है जिसके मन में अम्मा की इस रात-दिन की सेवा के प्रति सम्मान है....वरना परिवार वालों ने इस ओर ध्यान देना ही छोड़ दिया है। बस, जैसे वो करती हैं तो करती हैं। किसी ने इसे उनके फर्ज के खाते में डाल दिया तो किसी ने उनके स्वभाव के खाते में तो किसी ने उनकी दिनचर्या के खाते में। सब के ध्यान के केन्द्र में रहे तो केवल बीमार बाबू। स्वाभाविक भी था....बीमारी भी तो क्या थी, एक तरह से मौत का पैगाम। हाँ, मुझे ज़रूर यह चिन्ता सताती रहती थी कि बिना समय पर खाए, बिना पूरी नींद सोए, बिना थोड़ा-सा भी आराम किए जिस तरह अम्मा रात-दिन लगी रहती हैं तो कहीं वे न बीमार पड़ जाएँ, वरना कौन देखभाल कर सकेगा बाबू की इस तरह? बाबू दिन-दिन भर एक खास तेल से छाती पर मालिश करवाते थे तो रात-रात भर पैर दबवाते थे। मैं सोचती कि बाबू को क्या एक बार भी खयाल नहीं आता कि अम्मा भी तो थक जाती होंगी। रात में उन्हें भी तो नींद की ज़रूरत होती होगी या दिन में समय पर खाने की। पर नहीं, बाबू को इस सबका शायद कभी खयाल भी नहीं आता था। उनके लिए तो अपनी बीमारी और अपनी तीमारदारी ही सबसे महत्वपूर्ण थी और इस हालत में अम्मा से सेवा करवाना वे अपना अधिकार समझते थे तो इसी तरह सेवा करना अम्मा का फर्ज। कई बार अम्मा को थोड़ी-सी राहत देने के इरादे से मैं ही कहती कि बाबू, लाइए मैं कर देती हूँ मालिश.....

चार बज रहे हैं अम्मा खाना खाने चली जाएँ, तो बाबू मेरा हाथ झटक कर कहते....रहने दे। नहीं करवानी मुझे मालिश। और इस उत्तर के साथ ही उनके ललाट पर पड़ी सलवटों को देखकर न फिर अम्मा के हाथ रुकते, न पैर उठते। उसके बाद तो मैंने भी यह कहना छोड़ ही दिया।

तीन महीने पहले बाबू को जब नर्सिंग-होम में शिफ्ट किया तो ज़रूर मैंने थोड़ी राहत की साँस ली। सोचा, अब तो उनकी देखभाल का थोड़ा बोझ नर्स भी उठाया करेंगी....अम्मा को थोड़ी राहत तो मिलेगी। पर नहीं, नर्स से तो बाबू केवल दवाई खाते या बी.पी. चैक करवाते। बाकी की सारी सेवा-चाकरी तो अम्मा के ही जिम्मे रही। अम्मा रात-दिन बाबू के साथ नर्सिंग होम में ही रहतीं, और मालिश और पैर दबाने का काम भी पहले की तरह ही चलता रहता। हाँ, डॉक्टर सक्सेना की विशेष सिफ़ारिश पर रात में कभी कोई ज़रूरत पड़ जाए तो अम्मा के साथ रहने के लिए परिवार का कोई न कोई सदस्य आता रहता।

कल रात नौ बजे के करीब हम लोग खाना खाकर उठे ही थे कि फ़ोन की घण्टी बजी। मैंने फ़ोन उठाया तो उधर बड़े चाचा थे—

“छोटी, भैया की पहले आवाज़ गई और फिर थोड़ी देर बाद वे बेहोश हो गए। डॉक्टर सक्सेना को बुलाया। उन्होंने आकर अच्छी तरह देखा और फिर कमरे से बाहर आकर इतना ही कहा— बस, समझिए कि कुछ घण्टे की ही बात और है। आप फ़ोन करके बच्चों को बुला लीजिए। फिर उन्होंने नर्स को कुछ आदेश दिए और चले गए। सो देख, तू फ़ोन करके शिवम को कह दे कि सवेरे की पहली फ़्लाइट पकड़कर आ जाए। लखनऊ फ़ोन करके

बड़ी को भी कह दे कि वह भी जल्दी पहुँचे। अमेरिका से नमन का आना तो मुश्किल है, पर सूचना तो उसे भी दे ही दे। और सुन, फ़ोन करके तू नर्सिंग—होम आ जा। मैं बाहर निकलूँगा....सारी व्यवस्था भी तो करनी होगी।”

सुना तो मैं ज्यों का त्यों सिर थामकर बैठ गई। बिना बताए ही रवि जैसे सब कुछ समझ गए। स्नेह से मेरे कंधे पर हाथ रखकरा पूछा—“नर्सिंग होम चलना है?”

मैंने धीरे—से गर्दन हिलाकर अपनी स्वीकृति दी तो रवि ने पूछा—“क्या कहा चाचाजी ने.....क्या.....?”

“बाबू बेहोश हो गए हैं और डॉक्टर साहब ने अच्छी तरह देखने के बाद कहा कि बस कुछ ही घण्टों की बात और है, परिवार वालों को ख़बर कर दो.....यानी कि बाबू अब...” और मेरी आवाज रुन्ध गई। रवि ने मेरी पीठ सहलाई....“तुम तो हिम्मत रखो वरना अम्मा को कौन संभालेगा ?” अम्मा की बात सोचकर एक बार तो मैं और विचलित हो गई। क्या गुज़रेगी उन पर! पर फिर अपने को संभाल कर उठी और सबसे पहले बम्बई बड़े भय्या को फ़ोन किया। सारी बात सुनकर वे बोले—

“थैंक गॉड। बिना तकलीफ़ शुरू हुए ही शान्ति से जाने की नौबत आ गई। ठीक है, मैं सवेरे की पहली फ़्लाइट लेकर आता हूँ..पर देख, सुषमा तो आ नहीं पाएगी। दोनों बच्चों के बोर्ड के इम्तिहान जो हैं। मैं अकेला ही पहुँचता हूँ। वैसे भी सब लोग करेंगे भी क्या?” दीदी को फ़ोन किया तो उन्होंने भी इतना ही कहा कि जल्दी से जल्दी आने की कोशिश करती हूँ। इसके आगे—पीछे न कुछ कहा, न पूछा। बाबू तो ख़ैर जा ही रहे हैं,

अम्मा के बारे में ही कुछ पूछ लेते, पर नहीं। लगा, जैसे रस्म-अदायगी के लिए आना है, सो आ रहे हैं।

हैरान-सी मैं गाड़ी में बैठी तो रवि से कहे बिना न रहा गया, “रवि, भय्या और दीदी की आवाज़ का ऐसा ठण्डापन, जैसे सब इस सूचना की प्रतीक्षा ही कर रहे थे....किसी को कोई सदमा ही न लगा हो।”

“ऐसा क्यों सोचती हो? याद नहीं, कैसा सदमा लगा था उस दिन जब पहली बार डॉक्टर्स से कैंसर की रिपोर्ट मिली थी? उसके बाद कुछ महीनों तक तो कितनी लगन से बाबू की देखभाल और तीमारदारी चलती रही थी। शुरू के चार महीनों में दो बार तो बम्बई से बड़े भय्या आए। एक बार अमेरिका से छोटे भय्या भी आए.....उन्होंने तो बीमारी का सारा खर्च उठाने का जिम्मा भी लिया, वरना आज बाबू क्या नर्सिंग-होम का खर्चा उठा पाते? फिर, यहाँ रहनेवाले परिवार के दूसरे लोग भी तो रोज़ हाज़री बजाते ही रहे थे। हाँ, समय के साथ-साथ ज़रूर सब कुछ थोड़ा कम होता चला गया.....जो बहुत स्वाभाविक भी था।”

मैंने सोचा, ठीक ही तो कह रहे हैं रवि। दूसरों की क्या कहँ.. ... मैं खुद अब कहाँ पहले की तरह चार-चार, पाँच-पाँच घण्टे आकर बाबू के पास बैठती रही हूँ। इधर तो दो-दो दिन छोड़कर भी आने लगी थी। शायद यही जीवन की नंगी सच्चाई है कि जैसे-जैसे बीमारी लम्बी खिंचती चलती है, फ़र्ज के तौर पर ऊपर से भले ही सब कुछ जैसे-तैसे घिसटता रहे, पर मन की किसी अनाम परत पर उस अघट के घटने की प्रतीक्षा भी नहीं चलती रहती? शायद इसीलिए मौत की इस सूचना ने सदमा नहीं, राहत ही पहुँचाई सबको। फिर भी कम से कम.....मेरे मन में चलनेवाली

हर बात, हर सोच को अच्छी तरह समझने वाले रवि का एक हाथ मेरी पीठ सहलाने लगा—

“रिलैक्स शिवानी, रिलैक्स! इस समय सब बातों से ध्यान हटाकर तुम केवल अम्मा की बात सोचो। अभी तो तुम्हें ही संभालना है उन्हें। बाकी सब लोग तो बाबू में लग जाएँगे पर अम्मा पर जो गुज़रेगी....”

“जानती हूँ। लम्बी बीमारी ने जहाँ अन्तरंग से अन्तरंग सम्बन्धों के तार भी रेशे—रेशे करके बिखेर दिए, वहाँ एक अम्मा ही तो जुड़ी रहीं उनसे। उतने ही लगाव, उतनी ही निष्ठा के साथ रात—दिन सेवा करती रहीं उनकी। कितनी अकेली हो जाएँगी वे....
..कैसे झेलेंगी इस सदमे को?”

गाड़ी रूकी तो लगा, अरे, नर्सिंग—होम आ ही गया। समझ ही नहीं पा रही थी कि कैसे सामना करूँगी अम्मा का? जैसे—तैसे हिम्मत जुटाकर ऊपर चढ़ी तो हैरान! अम्मा वैसे ही बाबू के पैर दबा रही थीं। मुझे देखते ही बोली—

“अरे छोटी, तू कैसे आई इस बखत?”

समझ गई कि चाचा अम्मा को बिना कुछ बताए ही बाहर निकल गए। मैंने भी अपने को भरसक सहज बनाकर ही जवाब दिया—“चाचा का फ़ोन आया था। उन्हें किसी ज़रूरी काम से बाहर जाना था, सो उन्होंने मुझे तुम्हारे पास आकर बैठने को कहा, तो आ गई।”

अम्मा का सामना करना मुश्किल लग रहा था, सो यों ही मुड़ गई। सामने टिफ़िन दिखाई दिया तो पूछ बैठी—

“बारह बजे तुम्हारे लिए जो खाना भिजवाया था, खाया या हमेशा की तरह टिफ़िन में ही पड़ा है?”

“कैसी बात करे है छोटी? कित्ते दिनों बाद तो आज ऐसी गहरी नींद आई है इन्हें.... पैर दबाना छोड़ दूँगी तो जाग नहीं जाएँगे....और जो जाग गए तो तू तो जाने है इनका गुस्सा। देखा नहीं, कैसे लातें फटकारने लगे हैं ये! सो, दबाने दे मुझे तो तू। खाने का क्या है, पेट में पड़ा रहे या टिफ़िन में, एक ही बात है।”

कैसा तो डर बैठ गया है अम्मा के मन में बाबू के गुस्से का, कि उन्हें सोता जानकर भी वे पैर दबाना नहीं छोड़ रहीं। पिछले कई महीनों से यही तो स्थिति हो गई है उनकी कि खाना टिफ़िन में पड़ा रहे या पेट में, उन्हें कोई फ़र्क नहीं पडता और इस सबके लिए उन्होंने न कभी कोई किसी से शिकायत की न गुस्सा। गुस्सा करें भी तो किस पर? गुस्सा करना नहीं, बस, जैसे गुस्सा झेलना ही नियति बन गई थी उनकी। आश्चर्य तो मुझे इस बात पर हो रहा था कि इतनी अनुभवी अम्मा को क्या ये बिल्कुल पता नहीं चल रहा था कि बाबू गहरी नींद में नहीं बल्कि बेहोशी की हालत में पड़े हुए हैं। क्या आठ महीने की लम्बी बीमारी ने भूख—नींद के साथ—साथ उनकी सारी इन्द्रियों को भी सुन्न कर दिया है? एक तरफ़ तो कुछ घण्टों के बाद बाबू के साथ जो होने जा रहा है, उसकी तकलीफ़, अम्मा पर होने वाली उसकी प्रतिक्रिया की कल्पना और दूसरी तरफ़ सहज बने रहने का नाटक.....अजीब स्थिति से गुज़र रही थी मैं।

सबेरे ठीक पाँच बजे बाबू ने आखिरी साँस ली। आने के कुछ देर बाद ही नर्स ने मुझे बुलाकर कहा था कि वे यदि बार—बार अन्दर आएगी तो अम्मा को शक होगा और वे अभी से रोना—धोना

शुरू कर देंगी, इसलिए मैं ही थोड़ी-थोड़ी देर बाद बाबू की साँस का अन्दाज़ा लेती रहूँ और मैं बाबू के सिर पर हाथ फेरने के बहाने यह काम करती रही थी। कोई पाँच-सात मिनट पहले ही उनकी उखड़ी-उखड़ी साँस को देखकर मैं ही नर्स को बुला लाई। नर्स थोड़ी देर तक पल्स पर हाथ रखे खड़ी रही। फिर उसने धीरे-से बाबू के पैरों से अम्मा के हाथ हटाए। सब कुछ समझकर बाबू के पैरों से लिपटकर ही अम्मा छाती फाड़कर जो रोई तो उन्हें संभालना मुश्किल हो गया। परिवार के कुछ लोग शायद काफ़ी देर पहले ही नीचे आकर खड़े हो गए थे। नर्स की सूचना पर बड़े चाचा, चाची और रवि ऊपर आ गए। ये सब लोग तो रात से ही इस घटना के लिए मानसिक रूप से तैयार थे, नहीं थीं तो केवल अम्मा। सो, उन्हें संभालना मुश्किल हो रहा था। चाची ने अँसुवाई आँखों से अम्मा की पीठ सहलाते हुए कहा—धीरज रखो भाभी...धीरज रखो। पर अम्मा ऐसी ही रहीं और रोते-रोते फिर जो चुप हुई तो ऐसी चुप मानो अब उनमें रोनी की ताक़त भी न बची हो। हथेलियों में चेहरा ढाँपे वे बाबू के पैताने जस की तस बैठी रहीं। थोड़ी देर बाद नर्स के इशारे पर चाची, रवि और मैंने उन्हें उठाया तो उठना तो दूर, उनसे हिला तक नहीं गया। मैं हैरान! अभी कुछ देर पहले ही जो अम्मा पूरे दम-ख़म के साथ बाबू के पैर दबा रही थीं, उनसे अब हिला तक नहीं जा रहा था। गए तो बाबू थे, पर लगा जैसे जान अम्मा की निकल गई हो।

घर लाकर उन्हें बाबू के कमरे में ही बिठा दिया। वे ज़मीन पर दीवार के सहारे पीठ टिकाकर बैठ गईं.....बिल्कुल बेजान सी। बाकी सब लोग बाहर चले गए। बस, मैं उनके साथ बैठी रहीं, यह तय करके कि अब मैं यहाँ से हिलूँगी तक नहीं। बाहर इस

अवसर पर होनेवाली गतिविधियाँ अपने ढँग से चलती रहीं। बड़े भय्या दस बजे की फ्लाइट से आए और एयरपोर्ट से ही सीधे नर्सिंग—होम चले गए। दोनों चाचियाँ घर की व्यवस्था करने में लगी रहीं। साढ़े ग्यारह बजे के करीब दोनों चाचा, भय्या और रवि, बाबू के शव के साथ घर आए जहाँ परिवार के लोग पहले से ही इकट्ठा हो गए थे। शव देखकर एक बार ज़रूर सब फूट पड़े। फिर शुरू हुए यहाँ होने वाले रस्म—रिवाज़। पण्डित जी जाने कौन—कौन से श्लोक बोलते—पढ़ते रहे और साथ ही साथ कुछ करते भी रहे। फिर बाबू के पैर छूने का सिलसिला शुरू हुआ तो सबसे पहले अम्मा....दोनों चाची और मैं किसी तरह पकडकर अम्मा को बाहर लाए, हाथ जोड़कर अम्मा ने बाबू के पैरों में जो सिर टिकाया तो फिर उनसे उठा ही न गया। हमीं लोगों ने किसी तरह उन्हें उठाकर वापस कमरे में ला बिठाया और मैं पैर छूने की रस्म के लिए बाहर निकल गई। लौटी तो देखा, अम्मा उसी तरह दीवार में पीठ टिकाए बैठी हैं और उनकी आँखों से आँसू टपक रहे हैं। अम्मा की बगल में बैठकर उनकी पीठ सहलाते हुए मैं सोचने लगी, कैसी विडम्बना है ? आज अम्मा जिन बाबू के लिए रो रही हैं, कैसी ज़िन्दगी जी है अम्मा ने उनके साथ? बाबू की हर ज़रूरत...उनकी छोटी से छोटी इच्छा को भी पूरा करने के लिए सदैव तत्पर....ज़रा सी चूक होने पर उनके क्रोध के भय से थरथर काँपती अम्मा के जाने कितने दृश्य मेरी आँखों के आगे से गुज़र गए और मैं रो पड़ी। पर इस समय यह रोना बाबू के लिए नहीं, अम्मा के लिए था। मेरा मन हो रहा था कि अम्मा किसी तरह थोड़ी देर सो लें, पर अम्मा तो लेटने तक को तैयार नहीं थीं।

शाम पाँच बजे के करीब सब लोग लौटे। नहाना—धोना हुआ और तब बड़े भय्या अम्मा के पास आकर बैठे। सबसे पहले उन्होंने हाथ जोड़कर ऐसी शान्त मृत्यु के लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया। फिर अम्मा की पीठ सहलाते हुए आश्वासन में लिपटे सान्त्वना के कुछ शब्द बिखेरे.....फिर हिम्मत और धीरज रखने के आदेश देते रहे....वे और भी जाने क्या कुछ बोलते रहे, पर अम्मा बिल्कुल चुप। उनसे तो जैसे अब न रोया जा रहा है, न कुछ बोला जा रहा है। देर शाम की गाड़ी से दीदी आई और ज़ोर—ज़ोर से रोते हुए ही अम्मा के कमरे में घुसीं—हाय अम्मा, मैं तो बाबू के दर्शन भी नहीं कर सकी...अरे मुझे पहले किसी ने ख़बर की होती तो जल्दी आती.....अरे बाबूहाय अम्मा.....“मैंने ही उन्हें चुप कराकर जैसे—तैसे कमरे से बाहर भेजा। मैं नहीं चाहती थी कि अब कोई भी अम्मा के पास आए....वे किसी भी तरह थोड़ा सो लें....पर यह सम्भव ही नहीं हो पा रहा था। रात में सारे दिन के भूखे लोगों ने डटकर खिचड़ी खाई। मैं जल्दी से अम्मा की प्लेट लगाकर लाई और बराबर मनुहार करती रही कि अम्मा, कुछ तो खा लो....कल सारे दिन भी तुमने कुछ नहीं खाया था पर अम्मा ने कुछ बोलीं, न खाया। मेरे बराबर आग्रह करने पर उन्होंने बस, किसी तरह हिम्मत करके मेरे आगे हाथ जोड़ दिए। उनके इस नकार के आगे तो फिर मुझसे न कुछ कहते बना, न खाते। दूसरे दिन सवेरे दस बजे के करीब मातमपुरसी का सिलसिला शुरू हुआ। पुरुष लोग बाहर बैठ रहे थे तो स्त्रियाँ भीतर के कमरे में। सारी औरतें एक तरफ़, और दूसरी ओर घूँघट काढ़े, घुटनों में सिर टिकाए अकेली अम्मा। औरतों में शुरू में थोड़ा रोना—गाना चलता और फिर इधर—उधर की बातें। कोई बाबू की लम्बी बीमारी की बात करता तो कोई उनकी हिम्मत की, तो कोई उनके धीरज की। नौकर के

इशारे पर मैं आनेवालों के लिए पानी की व्यवस्था करने रसोई में चली गई। पानी की ट्रे लेकर बाहर गई तो हर आनेवाला परिवार वालों को सान्त्वना देते हुए जैसे यही कहता.....“अरे भाई यह उनकी मृत्यु नहीं, समझो उनकी मुक्ति हुई। बड़े भागवान थे जो ऐसी जानलेवा बीमारी के बाद भी ऐसी शान्ति से चले गए ” “यह तो उनके पुण्य का प्रताप ही था कि ऐसे शुभ मुहूर्त में प्राण त्यागे। कितनों को मिलती है ऐसी मौत?” तुम्हें सन्तोष करना चाहिए कि न कोई तकलीफ़ पाई, न दर्द झेला। बस, इस जी के जंजाल से मुक्त हो गए। हे परमात्मा, उनकी आत्मा को शान्ति देना। खाली ग्लासों की ट्रे लेकर मैं फिर रसोई में आई तो बाहर से हड़बड़ाती हुई—सी दीदी आई...

“छोटी, अम्मा क्या वहाँ बैठी—बैठी सो रही हैं? ये तो ग़नीमत थी, कि मैं उनके थोड़ा पास ही बैठी थी सो मैंने उनके हल्के—हल्के खर्राटों की आवाज़ सुन ली। पता नहीं किसी और ने भी सुना होगा तो क्या सोचा होगा? उस समय तो मैंने ज़रा पास सरककर उन्हें जगा दिया, पर उनसे तो जैसे नींद के मारे बैठा भी नहीं जा रहा है। तू चलकर बैठ उनके पास और संभाल, वरना फिर कहीं....”.

“अम्मा सो रही हैं?” मैंने तुरन्त ट्रे रखी और कमरे में आई। वहीं बैठी छोटी भाभी को इशारे से बुलाया और उनकी मदद से पास वाले कमरे में लाकर उन्हें पलंग पर सुला दिया और धीरे—धीरे उनका सिर थपकने लगी। देखते ही देखते वे सचमुच ही सो गई.. ...शायद एक गहरी नींद में, थोड़ी ही देर में फिर दीदी आई और यह दृश्य देखकर हैरान। भन्ना कर बोलीं....“ये क्या? तूने तो इन्हें

यहाँ लाकर सुला दिया और ये सो भी गई। हृद्द है भाई, बाहर तो औरतें इनके मातम में शिरकत करने आई हैं और ये यहाँ मजे से सो रही हैं, कल बाबू गुज़रे और आज ये ऐसी.....”

“दीदी!”मैंने उन्हें वाक्य भी पूरा नहीं करने दिया “आप नहीं जानतीं पर मैं जानती हूँ.....देखा है मैंने कि इन आठ महीनों में कितने बिन खाए दिन और अनसोई रातें गुज़ारी हैं अम्मा ने आप तो खैर लखनऊ में बैठी थीं, पर जो यहाँ रहते थे, जिन्होंने देखा है यह सब, उन्होंने भी कभी ध्यान दिया अम्मा पर? और तो और, रात—दिन जिन बाबू की सेवा में लगी रहती थीं, उन्होंने भी कभी सोचा कि वे आखिर कभी थकती भी होंगी....नहीं, बस ज़रा—सी चूक होने पर कितना गुस्साते थे अम्मा पर कि वे थरथरा जाती थीं। दीदी, समझ लीजिए आप कि इन आठ महीनों में पूरी तरह निचुड़ गई हैं अम्मा! आज न उनमें बैठने की हिम्मत है, न रोने की परिवार की सारी औरतें तो बैठी ही हैं बाहर.....आप भी जाकर वहीं बैठिए कह दीजिए उनसे कि अम्मा की तबियत ख़राब हो गई है, वे बैठने की हालत में नहीं हैं।”

मेरी बात....मेरे तेवर देखने के बाद दीदी से फिर कुछ कहते तो नहीं बना; बस, इतना ही कहा, “हम तो बैठ ही जाएँगे पर.....”और वे निकल गईं, मैंने उठकर दरवाज़ा बन्द कर दिया और दूसरी ओर की खिड़की खोल दी जो बाहर की ओर खुलती थी। खिड़की खोलते ही बाहर से आवाज़ आई....

“यह दुख की नहीं, तसल्ली की बात है बेटा....याद नहीं, डॉक्टर साहब ने क्या कहा था? भगवान ने आखिर इन्हें समय से मुक्त कर ही दिया....”मैंने घूमकर अम्मा की ओर देखा कि इन

आवाज़ों से कहीं वे जग न जाएँ.....पर नहीं, वे उतनी ही गहरी
नींद में सो रही थीं....एकदम निश्चिन्त!

.....

6. सच बोलने की भूल

यशपाल

परिचय :-

हिन्दी के यथार्थवादी कहानीकार हैं। असहयोग—आन्दोलन में भाग लेकर वे जेल में रहे थे। भारत के प्रगतिशील मार्क्सवादी लेखकों में यशपाल का स्थान अन्यतम है। दादा कॉमरेड, पार्टी कॉमरेड, दिव्या आदि उनके ख्याति—प्राप्त उपन्यास हैं। प्रेमचंद के बाद सब से अधिक प्रभावशाली कहानीकार यशपाल है। पूंजीवादी अर्थ—व्यवस्था और मध्यवर्गीय असंगति उनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित है। रोटी और सेक्स उनकी कथा का मूल स्वर है। अभिशप्त, वो दुनिया, शानदान, पिंचड़े की उड़ान, धर्मयुद्ध आदि उनके कई कहानी—संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

प्रस्तुत कहानी यथार्थवादी कहानी है। जिसमें पारिवारिक संकीर्णताओं का उल्लेख किया गया है।

.....

कहानी :- शरद के आरम्भ में दफ़्तर से दो मास की छुट्टी ले ली थी। स्वास्थ्य सुधार के लिए पहाड़ी प्रदेश में चला गया था। पत्नी और बेटी भी साथ थीं। बेटी की आयु तब सात वर्ष की थी। उस प्रदेश में बहुत छोटे—छोटे पड़ाव हैं। एक खच्चर किराये पर ले लिया था। असबाब खच्चर पर लाद लेते थे और तीनों हँसते—बोलते, पड़ाव—पड़ाव पैदल यात्रा कर रहे थे। रात पड़ाव की किसी दूकान पर या डाक—बँगले में बिता देते थे। कोई स्थान अधिक सुहावना लग जाता तो वहाँ दो रात ठहर जाते।

एक पड़ाव पर हम लोग डाक बंगले में ठहरे हुए थे। वह बंगला छोटी—सी पहाड़ी के पूर्वी आँचल में है। बँगले के चौकीदार ने बताया—साहब लोग आते हैं तो चोटी से सूर्यास्त का दृश्य जरूर देखते हैं। चौकीदार ने बता दिया कि बँगले के बिलकुल सामने से ही जंगलाती सड़क पहाड़ी तक जाती है। पत्नी सुबह आठ मील पैदल चल चुकी थी। उसे संध्या फिर पैदल तीन मील चढ़ाई पर जाने और लौटने का उत्साह अनुभव न हुआ परन्तु बेटी साथ चलने के लिए मचल गई।

चौकीदार ने आश्वासन दिया—लगभग डेढ़ मील सीधी सड़क है और फिर पहाड़ी पर अच्छी साफ पगडंडी है। जंगली जानवर इधर नहीं हैं। सूर्यास्त के बाद कभी—कभी छोटी जाति के भेड़िये जंगल से निकल आते हैं। भेड़िये भेड़—बकरी के मेमने या मुर्गियाँ उठा ले जाते हैं, आदमियों के समीप नहीं आते।

मैं बेटी को साथ लेकर सूर्यास्त से तीन घंटे पूर्व ही चोटी की ओर चल पड़ा। सावधानी के लिए टार्च साथ ले ली। पहाड़ी तक डेढ़ मील रास्ता बहुत सीधी—साफ था। चढ़ाई भी अधिक नहीं थी। पगडंडी से चोटी तक चढ़ने में भी कुछ कठिनाई नहीं हुई।

पहाड़ की चोटी पर पहुँच कर पश्चिम की ओर बर्फानी पहाड़ों की श्रृंखलाएँ फैली हुई दिखाई दीं। क्षितिज पर उतरता सूर्य बरफ से ढँकी पहाड़ की रीढ़ को छूने लगा तो ऊँची—नीची, आगे—पीछे खड़ी हिमाच्छादित पर्वत—श्रृंखलाएँ अनेक इन्द्रधनुषों के समान झलमलाने लगीं। हिम के स्फटिक कर्णों की चादरों पर रंगों के खिलवाड़ से मन उमग—उमग उठता था। बच्ची उल्लास से किलक—किलक उठती थी।

सूर्यास्त के दृश्य का सम्मोहन बहुत प्रबल था परन्तु ध्यान भी था—रास्ता दिखाई देने योग्य प्रकाश में ही डाक बँगले को जाती जंगलाती सड़क पर पहुँच जाना उचित है। अँधेरे में असुविधा हो सकती है।

सूर्य आग की बड़ी थाली के समान लग रहा था। वह थाली बरफ की शूली पर, अपने किनारे पर खड़ी वेग से घूम रही थी। आग की थाली का शनैः—शनैः बरफ के कंगूरों की ओट में सरकते जाना बहुत ही मनोहारी लग रहा था। हिम के असम विस्तार पर प्रतिक्षण रंग बदल रहे थे। बच्ची उस दृश्य को विस्मय से मुँह खोले देख रही थी। दुलार से समझाने पर भी वह पूरे सूर्य के पहाड़ी की ओट में हो जाने से पहले लौटने के लिए तैयार नहीं हुई।

सहसा सूर्यास्त होते ही चोटी पर बरफ की श्यामल नीलिमा फैल गयी। पहाड़ी की चोटी पर अब भी प्रकाश था पर हम ज्यों—ज्यों पूर्व की ओर नीचे उतर रहे थे, अँधेरा घना होता जा रहा था। आप को भी अनुभव होगा कि पहाड़ों में सूर्यास्त का झुटपुट उजाला बहुत देर तक नहीं बना रहता। सूर्य पहाड़ की ओट में होते ही उपत्यका में सहसा अँधेरा हो जाता है।

मैं पगडंडी पर बच्ची को आगे किये पहाड़ी से उतर रहा था। अब धुँधलका हो जाने के कारण स्थान—स्थान पर कई पगडंडियाँ निकलती फटती जान पड़ती थीं। हम स्मृति के अनुभव से अपनी पगडंडी पहचानकर नीचे जिस रास्ते पर उतरे, वह डाक बँगले की पहचानी हुई जंगलाती सड़क नहीं जान पड़ी। अँधेरा हो गया था। रास्ता खोजने के लिए चोटी की ओर चढ़ते तो अँधेरा अधिक घना

हो जाने और अधिक भटक जाने की आशंका थी। हम अनुमान से पूर्व की ओर जाती पगडंडी पर चल पड़े।

जंगल में घुप्प अँधेरा था। टार्च से प्रकाश का जो गोला सा पगडंडी पर बनता था, उससे कटीले झाड़ों और ठोकरे से बचने के लिए तो सहायता मिल सकती थी परन्तु मार्ग नहीं ढूँढा जा सकता था। चौकीदार ने अँचल में आस-पास काफी बस्ती होने की आश्वासन दिया। सोचा-समीप ही कोई बस्ती या झोंपड़ी मिल जायेगी, रास्ता पूछ लेंगे।

हम टार्च के प्रकाश में झाड़ियों से बचते पगडंडी पर चले जा रहे थे।

बीस-पचीस मिनट चलने के बाद एक हमारा रास्ता काटती हुई एक अधिक चौड़ी पगडंडी दिखाई दे गयी। सामने एक के बजाय तीन मार्ग देखकर दुविधा और घबराहट हुई, ठीक मार्ग कौन सा होगा ? अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने की अपेक्षा भटकाव का ही अवसर अधिक हो गया था। घना अँधेरा, जंगल में रास्ता जान सकने का कोई उपाय नहीं था। आकाश में तारे उजले हो गये थे परन्तु मुझे तारों की स्थिति में दिशा पहचान सकने की समझ नहीं है। पूर्व दिशा दायीं ओर होने का अनुमान था इसलिए चौड़ी पगडंडी पर दायीं ओर चल दिये। आधे घंटे चलने पर एक और पगडंडी रास्ता काटती दिखाई दी समझ लिया, हम बहुत भटक गये हैं। मैंने सीधे सामने चलते जाना ही उचित समझा।

जंगल में अँधेरा बहुत घना था। उत्तरी वायु चल पड़ने से सर्दी भी काफी हो गई थी। अपनी घबराहट बच्ची से छिपाये था। बच्ची भयभीत न हो जाये, इसलिए उसे बहलाने के लिए और उसे रूकावट का अनुभव न होने देने के लिए कहानी सुनाने लगा

परन्तु बहलाव थकावट को कितनी देर भुलाये रखता। बच्ची बहुत थक गई थी। वह चल नहीं पा रही थी। कुछ समय उसे शीघ्र ही बंगले जाने का आश्वासन देकर उत्साहित किया और फिर उसे पीठ पर उठा लिया। वह मेरे कंधे के ऊपर से मेरे सामने टार्च का प्रकाश डालती जा रही थी। मैं बच्ची के बोझ और थकावट से हाँफता हुआ अज्ञात मार्ग पर, अज्ञात दिशा में चलता जा रहा था। मेरी पीठ पर बैठी बच्ची सर्दी से सिहर-सिहर उठती थीं और मैं हाँफ-हाँफ कर पसीना-पसीना हो गया था। कुछ-कुछ समय बाद मैं दम लेने के लिए बच्ची को पगडंडी पर खड़ा करके घड़ी देख लेता था। अधिक रात न हो जाने के आश्वासन से कुछ साहस मिलता था।

हम अंजाने जंगल के घने अंधेरे में ढाई घंटे तक चल चुके थे। मेरी घड़ी में साढ़े नौ बज गये तो मेरा मन बहुत घबराने लगा। बच्ची को कहानी सुना कर बहलाना सम्भव न रहा। वह जंगल में भटक जाने के भय से माँ को याद कर टुसक-टुसक कर रोनें लगी। बँगले में अकेली, घबराती पत्नी के विचार ने और भी व्यकुल कर दिया। मेरी टाँगे थकावट से काँप रही थीं। सर्दी बहुत बढ़ गई थी। जंगल में वृक्ष के नीचे रात काट लेना भी सम्भव नहीं था। छोटे भेड़िये भी याद आ गये। वहाँ के लोग उन भेड़ियों से नहीं डरते थे पर छोटी बच्ची साथ होने पर भेड़िये से भेंट की आशंका से मेरा रक्त जमा जा रहा था। हम जंगल से निकल कर खेतों में पहुँचे तो दस बज चुके थे। कुछ खेत पार कर चुके तो तारों के प्रकाश में कुछ दूरी पर झोंपड़ी का आभास, मिला। झोंपड़ी में प्रकाश नहीं था। बच्चों को पीठ पर उठाए फसल भरे खेतों में से झोंपड़ी की ओर से बढ़ने लगा। झोंपड़ी के कुत्ते ने हमारे उस ओर बढ़ने का एतराज किया। कुत्ते की क्रोध

भरी ललकार से सांत्वना ही मिली। विश्वास हो गया, झोपड़ी सूनी नहीं थी।

पहाड़ों में वर्षा की अधिकता के कारण छतें ढालू बनाई जाती हैं। गरीब किसान ढालू छत के भीतर स्थान का उपयोग कर सकने के लिये अपनी झोंपड़ियों को दो तल्ला कर लेते हैं। मिट्टी की दीवारें, फूस की छत और चारों ओर कांटों की ऊँची बाढ़। किसान लोग नीचे के तल्ले में अपने पशु बाँध लेते हैं और ऊपर के तल्ले में उनकी गृहस्थी रहती है।

मैं झोंपड़ी की बाढ़ के मोहरे पर पहुँचा तो कुत्ता मालिक को चेताने के लिये बहुत जोर से भौंका। झोंपड़ी का दरवाजा और खिड़की बन्द थे। मेरे कई बार पुकारने और कुत्ते के बहुत उतेजना से भौंकने पर झोंपड़ी के ऊपर के भाग में छोटी-सी खिड़की खुली झुँझलाहट की ललकार सुनाई दी, “कौन है इतनी रात गये कौन आया है ?”

झोंपड़े के भीतर अँधेरे में से आती ललकार को उत्तर दिया—“मुसाफिर हूँ, रास्ता भटक गया हूँ। छोटी बच्ची साथ है। पडाव के डाक बंगले पर जाना चाहता हूँ।”

खिड़की से एक किसान ने सिर बाहर निकाला और क्रोध से फटकार दिया, “तुम शहरी हो न! तुम आवारा लोगों को देहात में क्या काम? चोरी-चकारी करने आये हो। भाग जाओ नहीं तो काट कर दो टुकड़े कर देंगे और कुत्ते को खिला देंगे।”

किसान को अपनी और बच्ची की दयनीय अवस्था दिखलाने के लिये अपने ऊपर टार्च का प्रकाश डाला और विनती

की—“बाल—बच्चेदार गृहस्थ हूँ। चोटी का सूर्यास्त देखने गये थे, भटक गये। पड़ाव के बँगले में बच्चे की माँ हमारी प्रतीक्षा कर रही है, बंगले का चौकीदार बता देगा। पड़ाव के डाक—बंगले पर जाना चाहता हूँ। रास्ता दिखाकर पहुँचा दो तो बहुत कृपा हो। तुम्हें कष्ट तो होगा, यथाशक्ति मूल्य चुका दूँगा।”

किसान और भी क्रोध से झल्लाया—“पड़ाव और डाक—बंगला तो यहाँ से सात मील है। कौन तुम्हारे बाप का नौकर है जो इस अँधेरे में रास्ता दिखाने जायेगा। भाग जाओ यहाँ से, नहीं तो कुत्ते को अभी छोड़ता हूँ।”

क्रूद्ध किसान मुझे झोंपड़ी की खिड़की से भाग जाने के लिये ललकार रहा था तो झोंपड़ी के ऊपर के भाग में दिया जल जाने से प्रकाश हो गया था और वह दिया खिड़की की ओर बढ़ आया था। दिये के प्रकाश में किसान की छोटी घुँघराली दाढ़ी और लम्बी—लम्बी सामने झुकी हुई मूँछों से ढका चेहरा बहुत भयानक और खूँखार लग रहा था। खिड़की की ओर दिया लाने वाली स्त्री थी। किसान की बात सुनकर मेरे प्राण सूख गये। समझा कि अँधेरे में बहुत भटक गया हूँ। उस अँधेरे, सर्दी और थकान में बच्ची को उठा कर सात मील चल सकना मेरे लिये सम्भव नहीं था। बच्ची के कष्ट के विचार से और भी अधीर हो गया।

बहुत गिड़गिड़ा कर किसान से प्रार्थना की—“भाई, दया करो! मैं अकेला होता तो जैसे—तैसे जाड़े और ओस में भी रात काट लेता परन्तु इस बच्ची का क्या होगा? हम पर दया करो। हमें कहीं भीतर बैठ जाने भर की ही जगह दे दो। उजाला होते ही हम चले जायेंगे।”

खिड़की के भीतर किसान के समीप आ बैठी औरत का चौड़ा चेहरा भी किसान की तरह ही बहुत रूखा और कठोर था परन्तु उसकी बात से आश्वासन मिला। स्त्री बोली—“अच्छा, अच्छा उसके साथ बच्ची है। इस समय पड़ाव तक कैसे जायेगा? आने दो, कुछ हो ही जायेगा।”

किसान स्त्री पर झुँझलाया—“क्या हो जायेगा, कहाँ टिका लेगी इन्हें? शहर के लोग हैं, इनकी मेहमानदारी हमारे बस की नहीं।”

स्त्री ने उत्तर दिया—“अच्छा—अच्छा, नीचे जाकर कुत्ते को पकड़ो, उन्हें आने तो दो।”

किसान ने नीचे आकर झोपड़ी का दरवाजा खोला। कुत्ते को डाँट कर चुप करा दिया और हमारे लिये बाड़े का मोहरा खोल दिया। स्त्री भी हाथ में दिया लिये नीचे आ गई थी। किसान और कुत्ता स्त्री के विरोध में असन्तोष से गुर्राते जा रहे थे। किसान बोलता जा रहा था—“बड़े शौकीन नवाब हैं शैर करने वाले। चले आये आधी रात में रास्ता भूल कर। कहाँ टिका लेगी तू इनको?”

स्त्री ने पति को समझाया—“बेचारे भटक कर परेशानी में आ गये हैं तो कुछ करना ही होगा। आने दो, यह लोग ऊपर लेटे रहेंगे। हम लोग यहाँ नीचे फूस डाल कर गुजारा कर लेंगे।”

किसान बड़बड़ाया—“हम नीचे कहाँ पड़े रहेंगे? मैया को बाहर निकाल देगी कि मुर्गी को बाहर फेंक देगी?”

झोंपड़ी के दरवाजे में कदम रखते समय मैंने टार्च से उजाला कर लिया कि ठोकर न लगे। कोठरी के भीतर दीवार के साथ

एक गैया जुगाली कर रही थी। टार्च का प्रकाश आँखों पर पड़ा तो गैया ने सिर हिला दिया और अपने विश्राम में विघ्न के विरोध में फुंकार दिया। दूसरी दीवार के समीप उल्टी रखी ऊँची टोकरी के नीचे से भी विरोध में मुर्गी की कुड़कुड़ाहट सुनाई दी। स्त्री ने हाथ में लिये दिये से दीवार के साथ बने जीने पर प्रकाश डाल कर कहा—“हम गरीबों के घर ऐसे ही होते हैं। बच्ची को हाथ पकड़ कर ऊपर ले आओ। मैं रोशनी ले चलती हूँ।”

किसान असन्तोष से बड़बड़ाता रहा। झोंपड़ी के ऊपर के तल्ले में छत बहुत नीची थी। दोनों ओर ढलती छत बीच में धन्नी पर उठी थी। धन्नी के ठीक नीचे भी गर्दन सीधी करके खड़े होना सम्भव नहीं था। नीची और संकरी खाट पर गंदे गूदड़ सा बिस्तर था। स्त्री ने बिस्तर की ओर संकेत किया—“तुम यहाँ पर लेट रहो। हम नीचे गुजारा कर लेंगे।”

स्त्री ने कोने में रखे कनस्तरों और सूखी हाँडियों में टटोल कर गुड़ का एक टुकड़ा मेरी ओर बढ़ा कर कहा—“बच्ची को खिला कर पानी पिला दो!” उसने कोने में रखे घड़े से लेकर एक लोटा जल खाट के समीप रख दिया।

स्त्री दिया उठाकर जीने की ओर बढ़ती हुई बोली—“क्या करूँ, इस समय घर में आटा भी नहीं है। साँझ को ही चुक गया। सुबह ही पनचक्की पर जाना होगा।”

स्त्री जीने की ओर बढ़ती हुई ठिठक गई। विस्मय से भवें उठाकर बोली—“हाँ! इतनी सी लड़की के गले में मोतियों की कंठी!” उसका स्वर कुछ भीग गया, “हम कुछ करें भी किसके

लिये? लड़का—लड़की घर पर थे तब कुछ हौसला रहता था। लड़की सियानी होकर अपने घर चली गई। लड़के को शहर का चस्का लगा है। दो बरस से उसका कुछ पता नहीं। जहाँ हो.....हे देवी माता, लोग उसको भी शरण दें।”

स्त्री नीचे उतर गई। तब भी असन्तुष्ट किसान के बड़बड़ाने की और कुछ उठाने—धरने की आहट आती रही।

बच्ची थोड़ा गुड़ खाकर और जल पीकर तुरन्त सो गई। मुझे गंधाते, गन्दे बिस्तर से उबकाई अनुभव हो रही थी। अपनी असुविधा की चिन्ता से अधिक चिन्ता थी—डाक—बंगले में हमारी प्रतीक्षा में असहाय पत्नी की। हम दोनों के न लौट सकने के कारण वह कैसे बिलख रही होगी। कहीं यही न सोच बैठी हो कि हम भेड़िया या आतताइयों के हाथ पड़ गये हैं। हमें खोजने के लिए डाक—बंगले के चपरासी को लेकर चोटी की ओर न चल पड़ी हो...। मस्तिष्क में चिन्ता की वेदना और पीठ थकान से इतनी अकड़ी हुई थी कि करवट लेने में दर्द अनुभव होता था। झपकी आती तो पीठ के दर्द और बिस्तर की असुविधा के कारण टूट जाती। करवटें बदलते सोच रहा था—रास्ता दिखाई देने योग्य उजाला हो जाये तो उठकर चल दें। खिड़की की साँधों से पौ फटती सी जान पड़ी। सोचा—ज़रा उजाला और हो जाये। नीचे सोये लोगों की नींद में विघ्न न डालने का भी ध्यान था। एक झपकी और ले लेना चाहता था कि नीचे से दबी—दबी फुसफसाहट सुनाई दी।

मर्द कह रहा था—“बहुत थके हुए हैं। सूरज बाँस भर चढ़ जायेगा तो भी उनकी नींद नहीं टूटेगी।”

स्त्री साँस के स्वर में बोली—“तुम्हें उन्हें जगा के क्या लेना है? ...नहीं उठते तो मैं जाऊँ?”

“अच्छा जाता हूँ!”

“आह! संभल कर”। आहट न करो। “गर्दन ऐसे दबा लेना कि आवाज़ न निकले। चीख न पड़े। छुरा ताक में है।”

स्त्री—पुरुष का परामर्श सुनकर मेरे रोम—रोम से पसीना छूट गया—हत्यारों से शरण माँगकर उनके पिंजड़े में बन्द हो गया था। सोच—पुकार कर कह दूँ...मेरे पास जो कुछ है ले लो, लड़की के गले की कंठी ले लो और हमारी जान बक्शो।

फिर मर्द की आवाज़ सुनाई दी—“बेचारी को रहने दूँ, मन नहीं करता!”

स्त्री बोली—“ऊँह, मन न करने की क्या बात है! उसे रहने देकर क्या होगा! कहाँ बचाते—छिपाते फिरोगे?”

मैंने आतंक से नींद में बेसुध बच्ची को बाँहों में ले लिया। भय की उतेजना से मेरा हृदय धक—धक कर रहा था। सोचा, उन्हें स्वयं ही पुकार कर, गिड़गिड़ा कर प्राण—रक्षा के लिये प्रार्थना करूँ परन्तु गले ने साथ न दिया। यह भी ख्याल आया कि यदि वे जाने लेंगे कि मैंने उनकी बात सुन ली है तो कभी छोड़ेंगे ही नहीं। अभी तो वे बात ही कर रहे हैं। भगवान उनके हृदय में दया दें। सोचा...यदि किसान के ऊपर आते ही मैं उसे धक्के से नीचे गिरा कर चीख पड़ूँ!...पर जाने आस—पास मील दो मील तक कोई दूसरे लोग भी हैं या नहीं!

सहसा दबे हुए गले से मुर्गी के कुड़कुड़ाने की आवाज आई। स्त्री का उपालम्भ भरा स्वर सुनाई दिया—“देखो, कहा भी था कि संभाल कर गर्दन पर हाथ डालना।”

ओह! यह तो मुर्गी के काटे जाने की मंत्रणा थी। अपने भय के लिये लज्जा से पानी-पानी हो गया।

स्त्री का स्वर फिर सुनाई दिया—“मुर्गी के लिए इतना क्यों बिगड़ रहे हो? शहर के बड़े लोगों की बड़ी बातें होती हैं। खातिर से खुश हो जायें तो बख्शीश में जो चाहें दे जायँ। मामूली आदमी नहीं हैं। लड़की के गले में मोतियों की कंठी नहीं देखी?”

दूसरी चिन्ता और लज्जा ने मस्तिष्क को दबा लिया। उस समय मेरी जेब में केवल ढाई रुपये थे। बंगले से सूर्यास्त का दृश्य देखने आया था, बाजार में खरीददारी करने के लिये नहीं। लड़की के गले में कंठी नकली मोतियों की, रुपये सवा की थी। दिये के उजाले में वे देहाती कंठी को क्या परख सकते थे? बहुत दुविधा में सोच रहा था—इन लोगों को क्या उत्तर दूँगा। कुछ बताये बिना चुपचाप ही कंठी दे जाऊँ। बाद में चालीस-पचास रुपये मनीआर्डर से भेज दूँगा।

खिड़की की साँधों से काफी सवेरा हो गया जान पडा। सोच ही रहा था, लड़की को जगा कर नीचे ले चलूँ कि जीने पर कदमों की चाप सुनाई दी और किसान का चेहरा ऊपर उठता दिखाई दिया।

किसान का चेहरा रात की भाँति निर्दय और डरावना न लगा। वह मुस्कराया—“नींद खुल गई! मैं तो जगाने के लिये आ रहा था। धूप हो जाने पर बच्ची को इतनी दूर ले जाने में

परेशानी होगी।” किसान ने पुराने अखबार में लिपटी एक बड़ी सी पुड़िया मेरी ओर बढ़ा दी और बोला, “यह लो, यह तुम्हारे ही भाग्य के थे। घर में आटा नहीं था जो दो रोटी बना देते इसीलिये तो मैं तुम्हें रात में हाँके दे रहा था पर घरवाली को बच्ची पर तरस आ गया। खेती के लिये ज़मी नहीं कितनी है। अंडे बेचकर ही गुज़ारा करते हैं। बरसात के अन्त में पापी पड़ोसी लोगों की मुर्गियों में बीमारी फैली तो हमारी मुर्गियाँ भी मर गयीं। मुर्गियाँ बचाने के लिए सभी कुछ किया। पीर की दरगाह पर दिये जलाये। मुर्गियों को ढेरों लहसुन खिलाया, सरकारी अस्पताल से दवाई भी लाकर दी पर उसका काल आ गया था, बची नहीं। हाँ यह मुर्गा बड़े जीवट का था। बीमारी झेलकर भी बच गया था। उसके लिये तुम आ गये। एक छोटी सी मुर्गी काल की आँख से बचकर छिप रही थी, वह बच्ची के लिये हो जायेगी। इस समय तुम्हारा काम चले, हमारा देखा जायेगा!”

किसान ने पुड़िया मेरे हाथ में दे दी और बोला—“रात के भूखे हो, चाहो तो नीचे चल कर कुल्ला करके मुँह—हाथ धो लो और अभी खा लो मन चाहे तो रास्ते में खा लेना।”

बच्ची को उठाया। उसने उठते ही भूख से व्याकुलता प्रकट की। दोनों ने अखबार की पुड़िया खोल कर नाश्ता कर लिया।

पेट भर नाश्ता करके मैं संकोच से मरा जा रहा था। किसान और उसकी स्त्री ने बहुत आशा से हमारी खातिर की थी। अपने अन्तिम मुर्गा, चूजा भी हमारे लिये काट दिये थे। मैंने संकोच से कहा—“इस समय मेरी जेब में कुछ है नहीं, केवल ढाई रुपये हैं। अपना नाम पता दे दो, मनीआर्डर से रुपये भेज दूँगा। मैंने बच्ची

के गले से कंठी उतार कर स्त्री की ओर बढ़ा दी, चाहे तो यह रख लो!”

स्त्री कंठी हाथ में लेकर प्रसन्नता से किलक उठी—“हाय, इसे तो मैं मठ में चढ़ा कर मानता मानूँगी। हमारी मुर्गियों पर देवताओं की कोप दृष्टि कभी न हो।”

स्त्री की सरलता मेरे मन को छू गई, रह न सका। कह दिया—“तुम्हें धोखा नहीं देना चाहता, कंठी के मोती नकली हैं।”

स्त्री ने कंठी मेरी ओर फेंक दी। घृणा और झुँझलाहट से ऊँगलियाँ छिटका कर बोली—“रखो, इसे तुम्हीं रखो। शहर के लोगों से धोखे के सिवा और मिलेगा क्या?”

किसान ठगे जाने से क्रुद्ध हो गया था, वह डाक—बंगले का रास्ता बताने के लिए साथ न चला। दिन का उजाला था। हम राह पूछ—पूछ कर बंगले पर पहुँच गये।

पत्नी डाक—बंगले के सामने अस्त—व्यस्त और विक्षिप्त की तरह धरती पर बैठी हुई दिखाई दी। उसका चेहरा ओस से भीगे सूखे पत्ते की तरह आँसुओं से तर और पीला था। आँखें गुड़हल के फूल की तरह लाल थीं। वह बच्ची को कलेजे पर दबाकर चीखकर रोई और फिर मुझसे चिपट—चिपट कर रोती रही।

पत्नी के सँभल जाने पर मैंने उसे रात के अनुभव सुना दिये। रात मेरे और बच्ची के असहाय अवस्था में गला काट दिये जाने के काल्पनिक भय में पसीना—पसीना होकर काँपने की बात सुनकर उसने भी भय प्रकट किया—हाय मैं मर गयी।

पत्नी को बच्ची की कंठी के लिये किसान स्त्री के लोभ और कंठी के विषय में सच्चाई जान कर उनके खिन्न हो जाने की बात भी बता दी।

पत्नी ने मुझे उलाहना दिया—“उन देहातियों को कंठी के बारे में बता खिन्न करने की क्या ज़रूरत थी? कंठी मठ में चढ़ा कर उनकी भावना सन्तुष्ट हो जाती।”

सोचा, किस भूल के लिये अधिक लज्जा अनुभव करूँ—काल्पनिक भय में पसीना—पसीना हो जाने की भूल के लिये या सच बोल देने की भूल के लिये।

.....

7. सौभाग्य के कोडे

प्रेमचंद

परिचय :—बनारस के लमही गाँव के एक कायस्थ परिवार में सन् 1880 में प्रेमचंद का जन्म हुआ। उनके अल्पायु में ही माता—पिता का देहावसान हो गया। अत्यंत परिश्रम से इण्ट्रेन्स पास करके, गाँव के एक स्कूल में अध्यापक हो गये। अद्यापन के साथ साथ अध्ययन से भी जुड़े रहकर बी.ए. पास किया और शिक्षा विभाग में उन्नति प्राप्त करते हुए सब डिप्टी इन्सपेक्टर के पद पर पहुँच गये। गाँधी जी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर सरकारी नौकरी से त्याग—पत्र दे दिया। तत्पश्चात् विविध पत्र पत्रिकाओं के संपादन का कार्य सम्हाला और स्तंभ रूप से साहित्य सृजन से जुड़ गये।

प्रेमचंद जी का असली नाम धनपतराय था। वे पहले नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखते थे। सोजे वतन उनका पहला कहानी संग्रह है जो अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था, क्योंकि अंग्रेज सरकार यह नहीं चाहती थी कि क्रान्ती की भावना को जगाने वाले कोई लेख, कहानियाँ छपे। माना जाता है कि तब से प्रेमचंद के छद्म नाम से लिखने लगे और साहित्य की लोकप्रियता के लिए, उर्दू के स्थान पर हिन्दी भाषा को रचना का माध्यम स्वीकार किया।

प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के अत्यंत विख्यात एवं प्रतीयमान लेखक हैं।

कहानी :- लड़के क्या अमीर के हों, क्या गरीब के, विनोदशील हुआ ही करते हैं। उनकी चंचलता बहुधा उनकी दशा और स्थिति की परवा नहीं करती। नथुवा के माँ-बाप दोनों मर चुके थे, अनाथों की भांति वह राय भोलानाथ के द्वार पर पडा रहता था। रायसाहब दयाशील पुरुष थे। कभी-कभी एक-आधा पैसा दे देते, खाने को भी घर में इतना जूठा बचता था कि ऐसे-ऐसे कई अनाथ अफर सकते थे, पहनने को भी उनके लडकों के उतारे मिल जाते थे, इसलिए नथुवा अनाथ होने पर भी दुखी नहीं था। रायसाहब ने उसे एक ईसाई के पंजे से छुड़ाया था। इन्हें इसकी परवा न हुई कि मिशन में उसकी शिक्षा होगी, आराम से रहेगा ; उन्हें यह मंजूर था कि वह हिन्दू रहे। अपने घर के जूठे भोजन को वह मिशन के भोजन से कहीं पवित्र समझते थे। उनके कमरों की सफाई मिशन की पाठशाला की पढ़ाई से कहीं बढ़कर थी। हिन्दू रहे, चाहे जिस दशा में रहे। ईसाई हुआ तो फिर सदा के लिए हाथ से निकल गया।

नथुवा को बस रायसाहब के बँगले में झाडू लगा देने के सिवाय और कोई काम न था। भोजन करके खेलता-फिरता था। कर्मानुसार ही उसकी वर्णव्यवस्था भी हो गयी। घर के अन्य नौकर-चाकर उसे भंगी कहते थे और नथुवा को इसमें कोई एतराज न होता था। नाम की स्थिति पर क्या असर पड सकता है, इसकी उस गरीब को कुछ खबर न थी। भंगी बनने में कुछ हानि भी न थी। उसे झाडू देते समय कभी पैसे पडे मिल जाते, कभी और कोई चीज़। इससे वह सिगरेट लिया करता था। नौकरों के साथ उठने-बैठने से उसे बचपन ही में तम्बाकू, सिगरेट और पान का चस्का पड गया।

रायसाहब के घर में यों तो बालकों और बालिकाओं की कमी न थी, दरजनों भाँजे—भतीजे पड़े रहते थे; पर उनकी निज की संतान केवल एक पुत्री थी, जिसका नाम रत्ना था। रत्ना को पढ़ाने को दो मास्टर थे, एक मेमसाहब अँग्रेजी पढ़ाने आया करती थीं। रायसाहब की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि रत्ना सर्वगुण आगरी हो और जिस घर में जाय, उसकी लक्ष्मी बने। वह उसे अन्य बालकों के साथ न रहने देते। उसके लिए अपने बँगले में दो कमरे अलग कर दिये थे; एक पढ़ने के लिए, दूसरा सोने के लिए। लोग कहते हैं, लाड़—प्यार से बच्चे जिद्दी और शरीर हो जाते हैं। रत्ना इतने लाड़—प्यार पर भी बड़ी सुशील बालिका थी। किसी नौकर को 'रे' न पुकारती, किसी भिखारी तक को न दुत्कारती। नथुवा को वह पैसे, मिठाइयाँ दे दिया करती थी। कभी—कभी उससे बातें भी किया करती थी। इससे वह लौंडा उसके मुँह लग गया था।

एक दिन नथुवा रत्ना के सोने के कमरे में झाड़ू लगा रहा था। रत्ना दूसरे कमरे में मेमसाहब से अँग्रेजी पढ़ रही थी। नथुवा की शामत जो आयी तो झाड़ू लगाते—लगाते उसके मन में यह इच्छा हुई कि रत्ना के पलंग पर सोऊँ; कैसी उजली चादर बिछी हुई है, गद्दा कितना नरम और मोटा है, कैसा सुन्दर दुशाला है। रत्ना इस गद्दे पर कितने आराम से सोती है, जैसे चिड़िया के बच्चे घोंसले में। तभी तो रत्ना के हाथ इतने गोरे और कोमल हैं, मालूम होता है, देह में रूई भरी हुई है। यहाँ कौन देखता है। यह सोचकर उसने पैर फर्श से पोंछे और चटपट पलंग पर आकर लेट गया और दुशाला ओढ़ लिया। गर्व और आनंद से उसका हृदय पुलकित हो गया। वह मारे खुशी के दो—तीन बार पलंग पर उछल पड़ा। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो मैं रूई में लेटा

हूँ। जिधर करवट लेता था, देह अंगुल—भर नीचे धँस जाती थी। वह स्वर्गीय सुख मुझे कहाँ नसीब। मुझे भगवान् ने रायसाहब का बेटा क्यों न बनाया? सुख का अनुभव होते ही उसे अपनी दिशा का वास्तविक ज्ञान हुआ और चित्त क्षुब्ध हो गया। एकाएक रायसाहब किसी जरूरत से कमरे में आये तो नथुवा को रत्ना के पलंग पर लेटे देखा। मारे क्रोध के जल उठे। बोले—क्यों बे सुअर, तू यह क्या कर रहा है ?

नथुवा ऐसा घबराया मानो नदी में पैर फिसल पड़े हों। चारपाई से कूद कर अलग खड़ा हो गया और फिर झाड़ू हाथ में ले ली।

रायसाहब ने फिर पूछा—यह क्या कर रहा था, बे?

नथुवा—कुछ तो नहीं सरकार।

रायसाहब—अब तेरी इतनी हिम्मत हो गयी हैं कि रत्ना की चारपाई पर सोये? नमकहराम कहीं का। लाना मेरा हंटर।

हंटर मँगवाकर रायसाहब ने नथुवा को खूब पीटा। बेचारा हाथ जोड़ता था, पैरों पड़ता था, मगर रायसाहब का क्रोध शांत होने का नाम न लेता था। सब नौकर जमा हो गये और नथुवा के जले पर नमक छिड़कने लगे। रायसाहब का क्रोध और भी बढ़ा। हंटर हाथ से फेंककर ठोकरोँ से मारने लगे। रत्ना ने यह रोना सुना तो दौड़ी हुई आयी और समाचार सुनकर बोली—दादाजी बेचारा मर जायगा; अब इस पर दया कीजिए।

रायसाहब—मर जायगा, उठवाकर फेंकवा दूँगा। इस बदमाशी का मजा तो मिल जायगा।

रत्ना—मेरी ही चारपाई थी न, मैं उसे क्षमा करती हूँ।

रायसाहब—जरा देखो तो अपनी चारपाई की गत। पाजी के बदन की मैल भर गयी होगी। भला, इसे सूझी क्या? क्यों बे, तुझे सूझी क्या?

यह कहकर रायसाहब फिर लपके; मगर नथुवा आकर रत्ना के पीछे दुबक गया। इसके सिवा और कहीं शरण न थी। रत्ना ने रोककर कहा—दादाजी, मेरे कहने से अब इसका अपराध क्षमा कीजिए।

रायसाहब—क्या कहती हो रत्ना, ऐसे अपराधी कहीं क्षमा किये जाते हैं। खैर, तुम्हारे कहने पर छोड़ देता हूँ, नहीं तो आज जान लेकर छोड़ता। सुन बे, नथुवा, अपना भला चाहता है तो फिर यहाँ न आना, इसी दम निकल जा, सुअर, नालायक।

नथुवा प्राण छोड़कर भागा। पीछे फिरकर न देखा। सड़क पर पहुँचकर वह खड़ा हो गया। यहाँ रायसाहब उसका कुछ नहीं कर सकते थे। यहाँ सब लोग उनकी मुँहदेखी तो न कहेंगे। कोई तो कहेगा कि लड़का था, भूल ही हो गयी तो क्या प्राण ले लीजिएगा? यहाँ मारे तो देखूँ, गाली देकर भागूँगा, फिर कौन मुझे पा सकता है। इस विचार से उसकी हिम्मत बँधी। बँगले की तरफ मुँह करके जोर से बोला—यहाँ आओ तो देखें, और फिर भागा कि कहीं रायसाहब ने सुन न लिया हो।

2

नथुवा थोड़ी ही दूर गया था कि रत्ना की मेमसाहिब अपने टमटम पर सवार आती हुई दिखाई दीं। उसने समझा, शायद मुझे पकड़ने आ रही हैं। फिर भागा, किन्तु जब पैरों में दौड़ने की शक्ति न रही तो खड़ा हो गया। उसके मन ने कहा, वह मेरा क्या

कर लेंगी, मैंने उनका कुछ बिगाड़ा है? एक क्षण में मेमसाहिबा आ पहुँचीं और टमटम रोककर बोलीं—नाथू, कहाँ जा रहे हो?

नथुवा—कहीं नहीं।

मेम: रायसाहब के यहाँ फिर जायगा तो वह मारेंगे। क्यों नहीं मेरे साथ चलता। मिशन में आराम से रह। आदमी हो जायगा।

नथुवा—किरस्तान तो न बनाओगी?

मेम—किरस्तान क्या भंगी से भी बुरा है, पागल।

नथुवा—न भैया, किरस्तान न बनूँगा।

मेम—तेरा जी चाहे न बनना, कोई जबरदस्ती थोड़े ही बना देगा।

नथुवा थोड़ी देर तक टमटम के साथ चला; पर उसके मन में संशय बना हुआ था। सहसा वह रुक गया। मेम साहिबा ने पूछ—क्यों, चलता क्यों नहीं?

नथुवा—मैंने सुना है, मिशन में जो कोई जाता है किरस्तान हो जाता है। मैं न जाऊँगा। आप झाँसा देती हैं।

मेम—अरे पागल, वहाँ तुझे पढाया जायगा, किसी की चाकरी न करनी पड़ेगी। शाम को खेलने को छुट्टी मिलेगी। कोट—पतलून पहनने को मिलेगी। चल के दो—चार दिन देख तो ले।

नथुवा ने इस प्रलोभन का उत्तर न दिया। एक गली से होकर भागा। जब टमटम दूर निकल गया तो वह निश्चित होकर सोचने लगा—जाऊँ? कहीं कोई सिपाही पकडकर थाने न ले जाय। मेरी बिरादरी के लोग तो वहाँ रहते हैं। क्या वह मुझे अपने घर रखेंगे। कौन बैठ कर खाऊँगा, काम तो करूँगा। बस, किसी को पीठ पर रहना चाहिए। आज कोई मेरी पीठ पर होता तो

मजाल थी कि रायसाहब मुझे यों मारते। सारी बिरादरी जमा हो जाती, घेर लेती, घर की सफाई बंद हो जाती, कोई द्वार पर झाड़ू तक न लगाता। सारी रायसाहबी निकल जाती। यह निश्चय करके वह घूमता—फिरता भंगियों के मुहल्ले में पहुँचा। शाम हो गयी थी, कई भंगी एक पेड़ के नीचे चटाइयों पर बैठे शहनाई और तबल बजा रहे थे। वह नित्य इसका अभ्यास करते थे। यह उनकी जीविका थी। गान—विद्या की यहाँ जितनी छीछालेदर हुई है, उतनी और कहीं न हुई होगी। नथुवा जाकर वहाँ खड़ा हो गया। उसे बहुत ध्यान से सुनते देखकर एक भंगी ने पूछा—कुछ गाता है?

नथुवा—अभी तो नहीं गाता; पर सिखा दोगे तो गाने लगूँगा।

भंगी—बहाना मत कर, बैठ; कुछ गाकर सुना, मालूम तो हो कि तेरे गला भी है या नहीं, गला ही न होगा तो क्या कोई सिखायेगा।

नथुवा मामूली बाजार के लड़कों की तरह कुछ—न—कुछ गाना जानता ही था, रास्ता चलता तो कुछ—न—कुछ गाने लगता था। तुरंत गाने लगा। उस्ताद ने सुना। जौहरी था, समझ गया यह काँच का टुकड़ा नहीं। बोला—कहाँ रहता है?

नथुवा ने अपनी रामकहानी सुनायी, परिचय हो गया। उसे आश्रय मिल गया और विकास का वह अवसर मिल गया, जिसने उसे भूमि से आकाश पर पहुँचा दिया।

3

तीन साल उड़ गये, नथुवा के गाने की सारे शहर में धूम मच गयी। और वह केवल एक गुणी नहीं, सर्वगुणी था; गाना, शहनाई बजाना, पखावज, सारंगी, तम्बूरा, सितार—सभी कलाओं में दक्ष हो

गया। उस्तादों को भी उसकी चमत्कारिक बुद्धि पर आश्चर्य होता था। ऐसा मालूम होता था कि उसने पहले ही पढ़ी हुई विद्या दुहरा ली है। लोग दस-दस सालों तक सितार बजाना सीखते रहते हैं और नहीं आता, नथुवा को एक महीने में उसके तारों का ज्ञान हो गया। ऐसे कितने ही रत्न पड़े हुए हैं, जो किसी पारखी से भेंट न होने के कारण मिट्टी में मिल जाते हैं।

संयोग से इन्हीं दिनों ग्वालियर में एक संगीत-सम्मेलन हुआ। देश-देशांतरों से संगीत के आचार्य निमंत्रित हुए। उस्ताद घूरे को भी नेवता मिला। नथुवा इन्हीं का शिष्य था। उस्ताद ग्वालियर चले तो नाथू को भी साथ लेते गये। एक सप्ताह तक ग्वालियर में बड़ी धूमधाम रही। नाथूराम ने वहाँ खूब नाम कमाया। उसे सोने का तमगा इनाम मिला। ग्वालियर के संगीत-विद्यालय के अध्यक्ष ने उस्ताद घूरे से आग्रह किया कि नाथूराम को संगीत-विद्यालय में दाखिल करा दो। यहाँ संगीत के साथ उसकी शिक्षा भी हो जायगी। घूरे को मानना पडा। नाथूराम भी राजी हो गया।

नाथूराम ने पाँच वर्षों में विद्यालय की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त कर ली। इसके साथ-साथ भाषा, गणित और विज्ञान में उसकी बुद्धि ने अपनी प्रखरता का परिचय दिया। अब वह समाज का भूषण था। कोई उससे न पूछता था, कौन जाति हो। उसका रहन-सहन, तौर-तरीका अब गायकों का-सा नहीं, शिक्षित समुदाय का-सा था। अपने सम्मान की रक्षा के लिए वह ऊँचे वर्णवालों का-सा आचरण रखने लगा। मदिरा-मांस त्याग दिया, नियमित रूप से संध्योपासना करने लगा। कोई कुलीन ब्राह्मण भी इतना आचार-विचार न करता होगा। नाथूराम तो पहले ही उसका नाम हो चुका था। अब उसका कुछ और सुसंस्कार हुआ। वह ना.रा.आचार्य मशहूर हो गया। साधारणतः लोग आचार्य ही

कहा करते थे। राज—दरबार से उसे अच्छा वेतन मिलने लगा। 18 वर्ष की आयु में इतनी ख्याति बिरले ही किसी गुणी को नसीब होती है। लेकिन ख्याति—प्रेम वह प्यास है, जो कभी नहीं बुझती, वह अगस्त्य ऋषि की भाँति सागर को पीकर भी शांत नहीं होती। महाशय आचार्य ने योरोप को प्रस्थान किया। वह पाश्चात्य संगीत पर भी अधिकृत होना चाहते थे। जर्मनी के सबसे बड़े संगीत—विद्यालय में दाखिल हो गये और पाँच वर्षों के निरंतर परिश्रम और उद्योग के बाद आचार्य की पदवी लेकर इटली की सैर करते हुए ग्वालियर लौट आये और उसके एक ही सप्ताह के बाद मदन कम्पनी ने उन्हें तीन हजार रुपये मासिक वेतन पर अपनी शाखाओं का निरीक्षक नियुक्त किया। वह योरोप जाने के पहले ही हजारों रुपये जमा कर चुके थे। योरोप में भी ओपराओं और नाट्यशालाओं में उनकी खूब आवभगत हुई थी। कभी—कभी एक दिन में इतनी आमदनी हो जाती थी, जितनी यहाँ के बड़े—से—बड़े गवैयों को बरसों में भी नहीं होती। लखनऊ से विशेष प्रेम होने के कारण उन्होंने वहीं निवास करने का निश्चय किया।

4

आचार्य महाशय लखनऊ पहुँचे तो उनका चित्त गद्गद हो गया। यहीं उनका बचपन बीता था, यहीं एक दिन वह अनाथ थे, यहीं गलियों में कनकौए लूटते फिरते थे, यहीं बाजारों में पैसे माँगते—फिरते थे। आह! यहीं उन पर हंटरो की मार पड़ी थी, जिसके निशान अब तक बने थे। अब वह दाग उन्हें सौभाग्य की रेखाओं से भी प्रिय लगते। यथार्थ में यह कोड़े की मार उनके लिए शिव का वरदान थी। रायसाहब के प्रति अब उनके दिल में क्रोध या प्रतिकार का लेशमात्र भी न था। उनकी बुराइयाँ भूल गयी थीं, भलाइयाँ याद रह गयी थीं; और रत्ना तो उन्हें दया और

वात्सल्य की मूर्ति—सी याद आती। विपत्ति पुराने घावों को बढ़ाती है, सम्पत्ति उन्हें भर देती है। गाड़ी से उतरे तो छाती धड़क रही थी। 10 वर्ष का बालक 23 वर्ष का जवान, शिक्षित भद्र युवक हो गया था। उसकी माँ भी उसे देखकर न कह सकती कि यही मेरा नथुवा है। लेकिन उनकी कायापलट की अपेक्षा नगर की कायापलट और भी विस्मयकारी थी। यह लखनऊ नहीं, कोई दूसरा ही नगर था।

स्टेशन से बाहर निकलते ही देखा कि शहर के कितने ही छोटे—बड़े आदमी उनका स्वागत करने को खड़े हैं। उनमें एक युवती रमणी थी, जो रत्ना से बहुत मिलती थी। लोगों ने उससे हाथ मिलाया और रत्ना ने उनके गले में फूलों का हार डाल दिया। यह विदेश में भारत का नाम रोशन करने का पुरस्कार था। आचार्य के पैर डगमगाने लगे, ऐसा जान पड़ता था, अब नहीं खड़े रह सकते। यह वही रत्ना है। भोली—भाली बालिका ने सौंदर्य, लज्जा, गर्व और विनय की देवी का रूप धारण कर लिया है। उनकी हिम्मत न पडी कि रत्ना की तरफ सीधी आँखों देख सकें।

लोगों से हाथ मिलाने के बाद वह उस बँगले में आये जो उनके लिए पहले ही से सजाया गया था। उसको देखकर वे चौंक पड़े; यह वही बँगला था जहाँ रत्ना के साथ वह खेलते थे; सामान भी वही था, तस्वीरें वही, कुर्सियाँ और मेजें वही, शीशे के आलात वही, यहाँ तक कि फर्श भी वही था। उसके अंदर कदम रखते हुए आचार्य महाशय के हृदय में कुछ वही भाव जागृत हो रहे थे, जो किसी देवता के मंदिर में जाकर धर्मपरायण हिन्दू के हृदय में होते हैं। वह रत्ना के शयनागार में पहुँचे तो उनके हृदय में ऐसी ऐंठन हुई कि आँसू बहने लगे—यह वही पलंग है, वही बिस्तर और वही फर्श! उन्होंने अधीर होकर पूछा—यह किसका बँगला है?

कम्पनी का मैनेजर साथ था, बोला—एक राय भोलानाथ हैं, उन्हीं का है।

आचार्य—रायसाहब कहाँ गये?

मैनेजर—खुदा जाने कहाँ चले गये। यह बँगला कर्ज की इल्लत में नीलाम हो रहा था। मैंने देखा हमारे थियेटर से करीब है। अधिकारियों से खतोकिताबत की और इसे कम्पनी के नाम खरीद लिया, 40 हजार में यह बँगला सामान समेत लिया गया।

आचार्य—मुफ्त मिल गया, तुम्हें रायसाहब की कुछ खबर नहीं?

मैनेजर—सुना था कि कहीं तीर्थ करने गये थे, खुदा जाने लौटे या नहीं।

आचार्य महाशय जब शाम को सावधान होकर बैठे तो एक आदमी से पूछा—क्यों, जी, उस्ताद घूरे का भी हाल जानते हो, उनका नाम बहुत सुना है।

आदमी ने सकरूण भाव से कहा—खुदाबंद, उनका हाल कुछ न पूछिए, शराब पीकर घर आ रहे थे, रास्ते में बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़े। उधर से एक मोटर लारी आ रही थी। ड्राइवर ने देखा नहीं, लारी उनके ऊपर से निकल गयी। सुबह को लाश मिली। खुदाबंद, अपने फन में एक था, अब उसकी मौत से लखनऊ वीरान हो गया, अब ऐसा कोई नहीं रहा जिस पर लखनऊ का नाम जिंदा रखेगा, पर यहाँ से ग्वालियर चला गया, फिर पता नहीं कि कहाँ गया।

आचार्य महाशय के प्राण सूखे जाते थे कि अब बात खुली, अब खुली, दम रुका हुआ था जैसे कोई तलवार लिये सिर पर खड़ा हो। बारे कुशल हुई, घोड़ा चोट खाकर भी बच गया।

आचार्य महाशय उस घर में रहते थे, किन्तु उसी तरह जैसे कोई नयी बहू अपने ससुराल में रहे। उनके हृदय से पुराने संस्कार न मिटते थे। उनकी आत्मा इस यथार्थ को स्वीकार न करती कि अब यह मेरा घर है। वह जोर से हँसते तो सहसा चौंक पड़ते। मित्रगण आकर शोर मचाते तो उन्हें एक अज्ञात शंका होती थी। लिखने-पढ़ने के कमरे में शायद वह सोते तो उन्हें रात-भर नींद न आती, यह ख्याल दिल में जमा हुआ था कि यह पढ़ने-लिखने का कमरा है। बहुत अच्छा होने पर भी वह पुराने सामान को बदल न सकते थे। और रत्ना के शयनगार को तो उन्होंने फिर कभी नहीं खोला। वह ज्यों-का-त्यों बंद पड़ा रहता था। उसके अंदर जाते हुए उनके पैर थरथराने लगते थे। उस पलंग पर सोने का ध्यान ही उन्हें नहीं आया।

लखनऊ में कई बार उन्होंने विश्वविद्यालय में अपने संगीत-नैपुण्य का चमत्कार दिखाया। किसी राजा-रईस के घर अब वह गाने न जाते थे, चाहे कोई उन्हें लाखों रुपये ही क्यों न दे; यह उनका प्रण था। लोग उनका अलौकिक गान सुनकर अलौकिक आनंद उठाते थे।

एक दिन प्रातःकाल आचार्य महाशय संध्या से उठे थे कि राय भोलानाथ उनसे मिलने आये। रत्ना भी उनके साथ थी। आचार्य महाशय पर रोब छा गया। बड़े-बड़े योरोपी थियेट्रों में भी उनका हृदय इतना भयभीत न हुआ था। उन्होंने जमीन तक झुककर रायसाहब को सलाम किया। भोलानाथ उनकी नम्रता से कुछ विस्मृति-से हो गये। बहुत दिन हुए जब लोग उन्हें सलाम किया करते थे। अब तो जहाँ जाते थे, हँसी उड़ाई जाती थी। रत्ना भी

लज्जित हो गयी। रायसाहब ने कातर नेत्रों से इधर—उधर देखकर कहा—आपको यह जगह तो पसन्द आयी होगी?

आचार्य—जी हाँ, इससे उत्तम स्थान की तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता।

भोलानाथ—यह मेरा ही बँगला है। मैंने ही इसे बनवाया और मैंने ही इसे बिगाड़ भी दिया।

रत्ना ने झंपते हुए कहा—दादाजी, इन बातों से क्या फायदा?

भोला—फायदा नहीं है बेटी, नुकसान भी नहीं। सज्जनों से अपनी विपत्ति कहकर चित्त शांत होता है। महाशय, यह मेरा ही बँगला है, या यों कहिए कि था। 50 हजार सालाना इलाके से मिलते थे। कुछ आदमियों की संगत में मुझे सट्टे का चस्का पड़ गया। दो—तीन बार ताबड़—तोड़ बाजी हाथ आयी, हिम्मत खुल गयी, लाखों के वारे—न्यारे होने लगे, किन्तु एक ही घाटे में सारी कसर निकल गयी। बधिया बैठ गयी। सारी जायदाद खो बैठा। सोचिए, पचीस लाख का सौदा था। कौड़ी चित्त पड़ती तो आज इस बँगले का कुछ और ही ठाट होता, नहीं तो अब पिछले दिनों को याद कर—करके हाथ मलता हूँ। मेरी रत्ना को आपके गाने से बड़ा प्रेम है। जब देखों आप ही की चर्चा किया करती है। इसे मैंने बी.ए. तक पढ़ाया.....

रत्ना का चेहरा शर्म से लाल हो गया। बोली—दादाजी, आचार्य महाशय मेरा हाल जानते हैं, उनको मेरे परिचय की जरूरत नहीं। महाशय, क्षमा कीजिएगा, पिताजी उस घाटे के कारण कुछ अव्यवस्थित चित्त—से हो गये हैं। वह आपसे यह प्रार्थना करने आये हैं कि यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो वह

कभी—कभी इस बँगले को देखने आया करें। इससे उनके आँसू पुछ जायेंगे। उन्हें इस विचार से सन्तोष होगा कि मेरा कोई मित्र इसका स्वामी है। बस, यही कहने के लिए यह आपकी सेवा में आये हैं।

आचार्य ने विनयपूर्ण शब्दों में कहा—इसके पूछने की जरूरत नहीं है। घर आपका है, जिस वक्त जी चाहे शौक से आयें, बल्कि आपकी इच्छा हो तो आप इसमें रह सकते हैं; मैं अपने लिए कोई दूसरा स्थान ठीक कर लूँगा।

रायसाहब ने धन्यवाद दिया और चले गये। वह दूसरे—तीसरे दिन यहाँ जरूर आते और घंटों बैठे रहते। रत्ना भी उनके साथ अवश्य आती, फिर कुछ दिन बाद प्रतिदिन आने लगे।

एक दिन उन्होंने आचार्य महाशय को एकांत में ले जाकर पूछा—क्षमा कीजिएगा, आप अपने बाल बच्चों को क्यों नहीं बुला लेते? अकेले तो आपको बहुत कष्ट होता होगा।

आचार्य—मेरा तो अभी विवाह नहीं हुआ और न करना चाहता हूँ।

यह कहते ही आचार्य महाशय ने आँखें नीची कर लीं।

भोलानाथ—यह क्यों, विवाह से आपको क्यों द्वेष है?

आचार्य—कोई विशेष कारण तो नहीं बता सकता, इच्छा ही तो है।

भोला—आप ब्राह्मण हैं?

आचार्यजी का रंग उड़ गया। सशंक होकर बोले—यूरोप की यात्रा के बाद वर्णभेद नहीं रहता। जन्म से चाहे जो कुछ हूँ, कर्म से तो शूद्र ही हूँ।

भोलानाथ—आपकी नम्रता को धन्य है, संसार में ऐसे सज्जन लोग भी पड़े हुए हैं, मैं भी कर्मों ही से वर्ण मानता हूँ। नम्रता, शील, विनय, आचार, धर्मनिष्ठा, विद्याप्रेम यह सब ब्राह्मणों के गुण हैं और मैं आपको ब्राह्मण ही समझता हूँ। जिसमें यह गुण नहीं, वह ब्राह्मण नहीं। रत्ना को आपसे बड़ा प्रेम है। आज तक कोई पुरुष उसकी आँखों में नहीं जँचा, किन्तु आपने उसे वशीभूत कर लिया इस धृष्टता को क्षमा कीजिएगा, आपके माता—पिता.....

आचार्य—मेरे माता—पिता तो आप ही हैं। जन्म किसने दिया, यह मैं स्वयं नहीं जानता। मैं बहुत छोटा था तभी उनका स्वर्गवास हो गया।

रायसाहब—आह! वह आज जीवित होते तो आपको देखकर उनकी गज—भर की छाती होती। ऐसे सपूत बेटे कहाँ होते हैं।

इतने में रत्ना एक कागज लिये हुए आयी और रायसाहब से बोली—दादाजी, आचार्य महाशय काव्य—रचना भी करते हैं, मैं इनकी मेज पर से यह उठा लायी हूँ। सरोजिनी नायडू के सिवा ऐसी कविता मैंने और कहीं नहीं देखी।

आचार्य ने छिपी हुई निगाहों से एक बार रत्ना को देखा और झेंपते हुए बोले—यों ही कुछ लिख लिया था। मैं काव्य—रचना क्या जानूँ?

6

प्रेम से दोनों विह्वल हो रहे थे। रत्ना गुणों पर मोहित थी, आचार्य उसके मोह के वशीभूत थे। अगर रत्ना उनके रास्ते में न आती तो कदाचित् वह उससे परिचित भी न होते। किन्तु प्रेम की

फैली हुई बाहों का आकर्षण किस पर न होगा? ऐसा हृदय कहाँ है, जिसे प्रेम जीत न सके?

आचार्य महाशय बड़ी दुविधा में पड़े हुए थे। उनका दिल कहता था, जिस क्षण रत्ना पर मेरी असलियत खुल जायगी, उसी क्षण वह मुझसे सदैव के लिए मुँह फेर लेगी। वह कितनी ही उदार हो, जाति के बंधन को कितना ही कष्टमय समझती हो, किन्तु उस घृणा से मुक्त नहीं हो सकती जो स्वभावतः मेरे प्रति उत्पन्न होगी। मगर इस बात को जानते हुए भी उनकी हिम्मत न पड़ती थी कि अपना वास्तविक स्वरूप खोलकर दिखा दें। आह! यदि घृणा ही तक होती तो कोई बात न थी, मगर उसे दुःख होगा, पीड़ा होगी, उसका हृदय विदीर्ण हो जायगा, उस दशा में न जाने क्या कर बैठे। उसे इस अज्ञात दशा में रखते हुए प्रणय—पाश को दृढ़ करना उन्हें परले सिरे की नीचता प्रतीत होती थी। यह कपट है, दगा है, धूर्तता है जो प्रेमाचरण में सर्वथा निषिद्ध है। इस संकट में पड़े हुए वह कुछ निश्चय न कर सकते थे कि क्या करना चाहिए। उधर रायसाहब की आमदोरफ्त दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। उनके मन की बात एक—एक शब्द से झलकती थी। रत्ना का आना—जाना बंद होता जाता था जो उनके आशय को और भी प्रकट करता था। इस प्रकार तीन—चार महीने व्यतीत हो गये। आचार्य महाशय सोचते, यह वही रायसाहब हैं, जिन्होंने केवल रत्ना की चारपाई पर जरा देर लेट रहने के लिए मुझे मारकर घर से निकाल दिया था। जब उन्हें मालूम होगा कि मैं वही अनाथ, अछूत, आश्रयहीन, बालक हूँ, तो उन्हें कितनी आत्मवेदना, कितनी अपमान—पीड़ा, कितनी लज्जा, कितनी दुराशा, कितना पश्चात्ताप होगा।

एक दिन रायसाहब ने कहा—विवाह की तिथि निश्चित कर लेनी चाहिए। इस लग्न में मैं इस ऋण से उऋण हो जाना चाहता हूँ।

आचार्य महाशय ने बात का मतलब समझकर भी प्रश्न किया—कैसी तिथि?

रायसाहब—यही रत्ना के विवाह की। मैं कुंडली का तो कायल नहीं, पर विवाह तो शुभ मुहूर्त में ही होगा।

आचार्य भूमि की ओर ताकते रहे, कुछ न बोले।

रायसाहब—मेरी अवस्था तो आपको मालूम ही है। कुश—कन्या के सिवा और किसी योग्य नहीं हूँ। रत्ना के सिवा और कौन है, जिसके लिए उठा रखता।

आचार्य महाशय विचारों में मग्न थे।

रायसाहब— रत्ना को आप स्वयं जानते हैं। आपसे उसकी प्रशंसा करनी व्यर्थ है। वह अच्छी है या बुरी है, उसे आपको स्वीकार करना पड़ेगा।

आचार्य महाशय की आँखों से आँसू बह रहे थे।

रायसाहब—मुझे पूरा विश्वास है कि आपको ईश्वर ने उसी के लिए यहाँ भेजा है। मेरी ईश्वर से यही याचना है कि तुम दोनों का जीवन सुख से कटे। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती। इस कर्तव्य से मुक्त होकर इरादा है कुछ दिन भगवत्—भजन करूँ। गौण रूप से आप ही उस फल के भी अधिकारी होंगे।

आचार्य ने अवरुद्ध कंठ से कहा—महाशय, आप मेरे पिता तुल्य हैं, पर मैं इस योग्य कदापि नहीं हूँ।

रायसाहब ने उन्हें गले लगाते हुए कहा—बेटा, तुम सर्वगुण—सम्पन्न हो। तुम समाज के भूषण हो। मेरे लिए यह महान गौरव की बात है कि तुम—जैसा दामाद पाऊँ। मैं आज तिथि आदि ठीक करके कल आपको सूचना दूँगा।

यह कहकर रायसाहब उठ खड़े हुए। आचार्य कुछ कहना चाहते थे, पर मौका न मिला, या यों कहो हिम्मत न पड़ी। इतना मनोबल न था, घृणा सहन करने की इतनी शक्ति न थी।

7

विवाह हुए महीना—भर हो गया। रत्ना के आने से पतिगृह उजाला हो गया है और पति—हृदय पवित्र। सागर में कमल खिल गया। रात का समय था। आचार्य महाशय भोजन करके लेटे हुए थे, उसी पलंग पर जिसने किसी दिन उन्हें घर से निकलवाया था, जिसने उनके भाग्यचक्र को परिवर्तित कर दिया था।

महीना—भर से वह अवसर ढूँढ रहे हैं कि वह रहस्य रत्ना को बतला दूँ। उनका संस्कारों से दबा हुआ हृदय यह नहीं मानता कि मेरा सौभाग्य मेरे गुणों ही का अनुग्रह है। वह अपने रुपये को भट्ठी में पिघलाकर उसका मूल्य जानने की चेष्टा कर रहे हैं। किन्तु अवसर नहीं मिलता। रत्ना ज्यों ही सामने आ जाती है, वह मंत्रमुग्ध से हो जाते हैं। बाग में रोने कौन जाता है, रोने के लिए तो अँधेरी कोठरी ही चाहिए।

इतने में रत्ना मुस्कराती हुई कमरे में आयी। दीपक की ज्योति मंद पड़ गयी।

आचार्य ने मुस्कराकर कहा—अब चिराग गुल कर दूँ न?

रत्ना बोली—क्यों, क्या मुझसे शर्म आती है ?

आचार्य—हाँ, वास्तव में शर्म आती है।

रत्ना—इसलिए कि मैंने तुम्हें जीत लिया?

आचार्य—नहीं, इसलिए कि मैंने तुम्हें धोखा दिया।

रत्ना—तुममें धोखा देने की शक्ति नहीं है।

आचार्य—तुम नहीं जानतीं। मैंने तुम्हें बहुत बड़ा धोखा दिया है।

रत्ना—सब जानती हूँ।

आचार्य—जानती हो मैं कौन हूँ ?

रत्ना—खूब जानती हूँ। बहुत दिनों से जानती हूँ। जब हम तुम दोनों इसी बगीचे में खेला करते थे, मैं तुमको मारती थी और तुम रोते थे, मैं तुमको अपनी जूठी मिठाइयाँ देती थी और तुम दौड़कर लेते थे, तब भी मुझे तुमसे प्रेम था; हाँ, वह दया के रूप में व्यक्त होता था।

आचार्य ने चकित हो कहा— रत्ना, यह जानकर भी तुमने.....

रत्ना— हाँ, जान कर ही। न जानती तो शायद न करती।

आचार्य— यह वही चारपाई है।

रत्ना— और मैं घाते में।

आचार्य ने उसे गले लगाकर कहा— तुम क्षमा की देवी हो।

रत्ना ने उत्तर दिया— मैं तुम्हारी चेरी हूँ।

आचार्य— रायसाहब भी जानते हैं ?

रत्ना— नहीं, उन्हें नहीं मालूम है। उनसे भूलकर भी न कहना, नहीं तो वह आत्मघात कर लेंगे।

आचार्य—वह कोडे अभी तक याद हैं।

रत्ना— अब पिताजी के पास उसका प्रायश्चित करने के लिए कुछ नहीं रह गया। क्या अब भी तुम्हें संतोष नहीं हुआ ?

.....